वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५
विवेक ज्योति
वर्ष ५७ अंक १० अक्तूबर २०१९
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अक्तूबर २०१९

प्रबन्ध सम्पादक **स्वामी सत्यरूपानन्द**

सम्पादक **स्वामी प्रपत्त्यानन्द**

सह-सम्पादक **स्वामी पद्माक्षानन्द**

व्यवस्थापक **स्वामी स्थिरानन्द**

वर्ष ५७ अंक १०

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवरण पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह भव्य मूर्ति देहरादून के मसूरी बाइपास के तिराहे पर स्थित है। इसकी स्थापना रामकृष्ण मिशन आश्रम, किशनगढ़, देहरादून के सौजन्य से हुई थी। आश्रम के सचिव स्वामी निर्विकल्पानन्द जी महाराज, तत्कालीन उत्तराखण्ड के माननीय मुख्यमन्त्री श्री विजय बहुगुणा और संस्कृति मन्त्री श्रीमती अमृता रावत ने स्वामी विवेकानन्द जी की १५०वीं जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में १२ जनवरी, २०१३ ई. को इसका लोकार्पण किया था।

अक्तूबर माह के जयन्ती और त्योहार

२ गाँधी जयन्ती
६ दुर्गा पूजा (महाष्टमी)
८ विजयादशमी
२७ काली पूजा, लक्ष्मी पूजा
२९ भाई-दूज

'विवेक-ज्योति' की मूल्य-वृद्धि सूचना

सम्माननीय पाठको ! सभी सामग्रियों – कागज, मुद्रण के गुणवत्ता सुधार और डाक, वेतन आदि की दरों में पर्याप्त वृद्धि से 'विवेक-ज्योति' पर आर्थिक भार बहुत अधिक पड़ रहा है । इसलिये हम इसका थोड़ा-सा मूल्य बढ़ाने जा रहे हैं । अब **जनवरी, २०२०** से नयी मूल्य-राशि होगी – **वार्षिक शुल्क रु. १६०/-, एक प्रति रु.१७/-, पाँच वर्षों के लिये रु. ८००/- और दस वर्षों के लिये रु. १६००/-। संस्थाओं के लिये, वार्षिक रु.२००/- और पाँच वर्षों के लिये रु. १०००/-। विदेशों के लिए, वार्षिक शुल्क $ ५० और पाँच वर्षों के लिए $ २५० (हवाई डाक से)।** इसके अलावा 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' के अन्तर्गत **जनवरी, २०२०** से एक पुस्तकालय हेतु सहयोग राशि **१८००/-** होगी। आशा है, आप हमारा पूर्ववत् सहयोग करते रहेंगे ।

स्वामी स्थिरानन्द,
व्यवस्थापक,
'विवेक-ज्योति' कार्यालय

*विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : **www.rkmraipur.org***

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री विनय कुमार सिंह, जिला - मऊ (उ.प्र.)	१०००/-
श्री अमृत लाल शांडिल्य, कपान, जांजगीर-चाँपा	११००/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५७४.	श्री अनुराग, (स्मृति में श्रीरामराज एवं श्रीमती उषाप्रसाद) दिल्ली	लालुक कॉलेज, पो.-लालुक, वाया-मेनेहा, जि.-लखीमपुर (असम)
५७५.	,, ,,	गवर्नमेंट पॉलीटेक्नीक कॉलेज, बेहराम, भगत सिंह नगर (पंजाब)
५७६.	,, ,,	शासकीय महाविद्यालय बलौदा, जांजगीर चांपा (छ.ग.)
५७७.	श्री केदार नीरज दापके, भारत नगर, नागपुर (महा.)	गवर्नमेंट स्वामी विवेकानन्द डिग्री कॉलेज, रीवा (म.प्र.)
५७८.	श्री ललित कुमार, गाँव - मनेठी खेड़ी (हरियाणा)	गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ नर्सिंग सरदार पटेल मेडि.कालेज, बीकानेर

वर्ष ५७ अक्तूबर २०१९ अंक १०

भवानी-स्तुति

गुरुस्त्वं शिवस्त्वं च शक्तिस्त्वमेव
त्वमेवासि माता पिताऽसि त्वमेव।
त्वमेवासि विद्या त्वमेवासि बुद्धि-
र्गतिर्मे मतिर्देवि सर्वं त्वमेव।।

– हे भवानी! हे देवि! आप ही मेरी गुरु हैं, आप ही शिव हैं, आप ही शक्ति भी हैं, आप ही माता और पिता हैं, आप ही विद्या, बुद्धि और मति आदि हैं, मेरे लिए तो सब कुछ आप ही हैं।

शरण्ये वरेण्ये सुकारुण्यपूर्णे
हिरण्योदराद्यैरगम्येऽतिपुण्ये।
भवारण्यभीतं च मां पाहि भद्रे
नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि।।

– हे शरणागतवत्सले! हे सर्वश्रेष्ठ! हे करुणामयी! हे हिरण्यगर्भ ब्रह्मा आदि से भी अगम्यरूपे! हे अति पवित्रता स्वरूपे! हे कल्याणकारिणी! मैं इस संसार रूपी अरण्य अर्थात् भवाटवी से भयभीत हूँ। अत: मेरी आप रक्षा करें। हे भवानी! मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।

पुरखों की थाती

लोभमूलानि पापानि संकटानि तथैव च।
लोभात्प्रवर्तते वैरं अतिलोभात् विनश्यति।।६५४।।

– लोभ समस्त पापों तथा संकटों की जड़ है, क्योंकि लोभ से ही शत्रुता उत्पन्न होती है और लोभ के अतिरेक से व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता है।

विवेकः सह सम्पत्या विनयो विद्यया सह।
प्रभुत्वं प्रश्रयोपेतं चिह्नमेतन्-महात्मनाम्।।६५५।।

– महात्माओं के चरित्र में निम्नलिखित लक्षण दीख पड़ते हैं – उनके पास सम्पत्ति के साथ विवेक होता है, विद्या के साथ विनय होता है और प्रभुत्व (सत्ता) के साथ सज्जनता होती है।

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम्।
वृथा दानं धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवाऽपि च।।६५६।।

– धनवान को दान करना और तृप्त मनुष्य को भोजन कराना वैसे ही निरर्थक है, जैसे कि समुद्र में वर्षा होना और दिन के समय दीपक को जलाये रखना।

स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्तुमन्यथा।
सुतप्तमपि पानीयं पुनर्गच्छति शीतताम्।।६५७।।

– केवल उपदेशों के द्वारा किसी व्यक्ति के स्वभाव को नहीं बदला जा सकता; पानी को चाहे जितना भी गरम करके रखा जाय, वह फिर वैसा ही शीतल हो जाता है।

अहिंसा का पुजारी : क्यों जन-जन का हिय-हार है?

जब भारतवासी वर्षों की मुगल और अँग्रेजी पराधीनता से अपना स्वाभिमान और आत्मविश्वास विस्मृत कर चुके थे, जब भारत की जनता क्षुधा-पीड़ित, अशिक्षित थी, यहाँ तक कि कुछ लोगों में एक प्रबुद्ध आत्मसम्मानित नागरिक की भावना तक नहीं थी, तब उस विपरीत तमान्ध परिस्थिति में गाँव-गाँव जाकर, स्वच्छता, स्वाधीनता, सामूहिक जीवन, एकता, समभाव आदि की शिक्षा देनेवाले अहिंसा के पुजारी मोहनदास करमचन्द गाँधी 'बापू' को कौन नहीं जानता ! उन्हें बड़ी श्रद्धा के साथ लोग महात्मा गाँधी कहते हैं। भारत का बच्चा-बच्चा महात्मा गाँधी से परिचित है। बापू का त्याग, उनकी सहिष्णुता, उनका विशाल संवदेनशील हृदय और राष्ट्रप्रेम आनेवाली पीढ़ियों को शताब्दियों तक प्रेरित करता रहेगा। इस सत्य-अहिंसा के पुजारी के सम्बन्ध में किसी ने कितना सटीक लिखा है –

दे दी हमें आजादी, बिना खड्ग बिना ढाल।
साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल।।

तत्कालीन पराधीन भारत की प्रमुख आवश्यकताएँ थीं – भारतवासियों को सबल बनाना, उनमें स्वाधीनता, आत्मसम्मान की भावना का बोध कराना, अँग्रेजी शासन को बिना अस्त्र-शस्त्र के भारत छोड़ने को बाध्य करना, अंग्रेजों की कूटनीति, कुचक्र को अपने सीमित साधनों से विफल करना और उनके अत्याचार और कुशासन से भारतवासियों को मुक्ति दिलाना। महात्मा गाँधी ने कृषिप्रधान भारत के उत्थान के लिए गाँव-गाँव जाकर ठीक से कृषि करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने स्वच्छता-बोध के अभाव में अस्वस्थता और बीमारियों से देशवासियों को मुक्ति दिलाने हेतु उन्हें घर और बाहर के नालों और सड़कों की सफाई करने को प्रेरित किया। महात्मा गाँधी स्वयं भारत के गाँवों में पैदल यात्रा करते, ग्रामीणों को जुटाते, उनके साथ स्वयं रहकर गाँवों की सफाई करते और एक गाँव से दूसरे गाँव चले जाते। समाज को एक जूट करने और राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए उन्होंने विभिन्न वर्गों में विभाजित जाति-प्रथा, छुआछूत का भेद मिटाया, सबको समान सम्मान दिया।

भारत सरकार द्वारा गाँधीजी की १५०वीं जयन्ती मनाई जा रही है। छत्तीसगढ़ राज्य सरकार की कैबिनेट मिटींग में विभिन्न प्रकार से वर्षव्यापी कार्यक्रमों पर चर्चा हुई। इस अवसर पर हम मानव जीवन में सम्पृक्त गाँधीजी के जीवन-

सिद्धान्तों पर थोड़ी चर्चा करेंगे, जिनके कारण वे जन-जन के हृदय-हार बने।

सत्य – गाँधीजी का जीवन सत्यमय था। उन्होंने विभिन्न परिस्थितियों में कभी सत्य का आश्रय नहीं छोड़ा और अपने जीवन की सफलता का श्रेय सत्य को दिया। वे सत्य के सम्बन्ध में लिखते हैं – "जहाँ सत्य की साधना और उपासना होती है, वहाँ भले ही परिणाम हमारी धारणा के अनुसार न निकले, किन्तु जो अनपेक्षित परिणाम निकलता है, वह अकल्याणकारी नहीं होता और कई बार अपेक्षा से अधिक अच्छा होता है।"[१]

"सत्य एक विशाल वृक्ष है। ज्यों-ज्यों उसकी सेवा की जाती है, त्यों-त्यों उसमें से अनेक फल पैदा होते दिखाई पड़ते हैं। उसका अन्त ही नहीं होता। हम जैसे-जैसे उसकी गहराई में उतरते जाते हैं, वैसे-वैसे उसमें से अधिक रत्न मिलते जाते हैं, सेवा के अवसर प्राप्त होते रहते हैं।"

अहिंसा – गाँधीजी ने अहिंसा पर बल दिया। उनकी अहिंसा वृत्ति ने वह काम किया, जो गोलियों और तोपों ने नहीं किया। अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन कर वे कहते हैं – "अहिंसा व्यापक वस्तु है। हम हिंसा की होली के बीच घिरे हुए पामर प्राणी हैं। यह वाक्य गलत नहीं है कि 'जीव जीव पर जीता है'। मनुष्य एक क्षण भी बाह्य हिंसा के बिना जी नहीं सकता। खाते-पीते, उठते-बैठते सभी क्रियाओं में इच्छा-अनिच्छा से कुछ-न-कुछ हिंसा करता ही रहता है। यदि इस हिंसा से छूटने का वह महाप्रयत्न करता है, उसकी भावना में केवल अनुकम्पा होती है, वह सूक्ष्म से सूक्ष्म जन्तु का भी नाश नहीं चाहता और यथाशक्ति उसे बचाने का प्रयत्न करता है, तो वह अहिंसा का पुजारी है। ... दो राष्ट्रों में युद्ध छिड़ने पर अहिंसा में विश्वास रखनेवाले व्यक्ति

का धर्म है कि वह उस युद्ध को रोके, जो इसमें असक्षम हो, वह युद्ध में सम्मिलित हो और सम्मिलित होते हुए भी उसमें से अपने को, अपने देश को और सारे संसार को उबारने का हार्दिक प्रयत्न करे।''[२]

... यदि मुझे उस राज्य के साथ व्यवहार बनाए रखना हो, उस राज्य के झंडे के नीचे रहना हो, तो या तो मुझे प्रकट रूप से युद्ध का विरोध करके उसका सत्याग्रह के शास्त्र के अनुसार उस समय तक बहिष्कार करना चाहिए, जब तक उस राज्य की युद्ध-नीति में परिवर्तन न हो अथवा उसके जो कानून भंग करने के योग्य हों, उनका सविनय भंग करके जेल की राह पकड़नी चाहिए अथवा उसके युद्धकाल में सम्मिलित होकर उसका मुकाबला करने की शक्ति और अधिकार प्राप्त करना चाहिए। मुझमें ऐसी शक्ति नहीं थी, इसलिये मैंने माना कि मेरे पास युद्ध में सम्मिलित होने का ही मार्ग बचा था।''[३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधीजी अहिंसा के अन्ध-समर्थक नहीं थे, अपितु आवश्यकतानुसार युद्ध करने को तत्पर थे। अहिंसा सत्यप्राप्ति में सहायक है। वे कहते हैं – ''सत्य की शोध के मूल में अहिंसा है। मैं प्रतिक्षण यह अनुभव करता हूँ कि जब तक यह अहिंसा हाथ में नहीं आती, तब तक सत्य मिल ही नहीं सकता।''[४]

लोभ और त्याग का संघर्ष – दक्षिण भारत से वापस आते समय गाँधीजी को बहुत-सी सभाओं में मानपत्र समर्पण के साथ-साथ हीरे की अंगूठियाँ, सोने की जंजीरें और सोने-चाँदी के बहुत से गहने उपहार में मिले थे। पचास गिन्नियों का एक हार कस्तूरबाई के लिए मिला था। गाँधीजी ने सोचा, ये सभी उपहार मेरी सार्वजनिक सेवा के लिए ही मिले हैं। क्या मैं सेवा पैसे और उपहार लेने के लिए करता हूँ? इसे लोगों की सेवा में ही लगना चाहिए। रात भर गाँधीजी के मन में उसके प्रति लोभ और त्याग पर संघर्ष चलता रहा। अन्त में उन्होंने अपनी पत्नी और बच्चों से परामर्श कर, उन्हें भी आश्वस्त कर उन अलंकारों का त्याग कर दिया और वहीं एक ट्रस्ट बनाकर सार्वजनिक सेवा के लिए वह सम्पत्ति दान कर दी।

आज जब देश-विदेश में इतने घोटाले हो रहे हैं। थोड़ी-सी सम्पत्ति के लिए भाई-भाई में विवाद हो रहे हैं, लूट-चोरी हो रही है, लोग व्यक्तिगत सम्पत्ति बढ़ाने हेतु सरकारी सार्वजनिक सम्पत्ति का हरण कर रहे हैं, उस स्थिति में गाँधीजी का जन-सेवा हेतु यह उपहार-त्याग हमें लोभ से लड़कर लोकसेवा और आदर्श जीवन की ओर ले जाने में प्रेरित करेगा।

ब्रह्मचर्य व्रत – गाँधीजी ने ब्रह्मचर्य व्रत लिया। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं – ''ब्रह्मचर्य के सम्पूर्ण पालन का अर्थ है – ब्रह्म-दर्शन। यह ज्ञान मुझे शास्त्र द्वारा नहीं हुआ। इसका अर्थ मेरे सामने क्रमशः अनुभव से सिद्ध होता गया। उससे सम्बन्धित शास्त्र मैंने बाद में पढ़े। ब्रह्मचर्य में शरीर-रक्षण, बुद्धि रक्षण और आत्मा का रक्षण समाया हुआ है, इसे मैं व्रत लेने के बाद दिन-दिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा। अब ब्रह्मचर्य को एक घोर तपश्चर्या के रूप में रहने देने के बदले उसे रसमय बनाना था, उसी के सहारे निभाना था, इसलिये उसकी विशेषताओं के मुझे नित नये दर्शन होने लगे।... इस प्रकार यद्यपि मैं रस लूट रहा था, तो भी कोई यह न माने की कठिनाई का अनुभव नहीं करता था। यह एक असिधारा-व्रत है, इसे मैं समझ रहा हूँ और निरन्तर जागृति की आवश्यकता का अनुभव कर रहा हूँ।

''ब्रह्मचर्य का अर्थ है, मन, वचन, काया से इन्द्रियों का संयम। इस संयम के लिये त्याग की आवश्यकता है। ...त्याग के क्षेत्र की कोई सीमा नहीं है, जैसे ब्रह्मचर्य की महिमा की कोई सीमा नहीं है। ऐसा ब्रह्मचर्य अल्प प्रयत्न से सिद्ध नहीं होता। करोड़ों लोगों के लिए वह सदा केवल आदर्श रूप रहेगा। क्योंकि प्रयत्नशील ब्रह्मचारी अपनी त्रुटियों का नित्य दर्शन करेगा, अपने अन्दर कोने में छिपकर बैठे हुए विकारों को पहचान लेगा और उन्हें निकालने का प्रयास करेगा। जब विचारों पर इतना अंकुश प्राप्त नहीं होता कि इच्छा के बिना एक भी विचार मन में न आए, तब तक ब्रह्मचर्य सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता।''

ईश्वर और पुरुषार्थ – गाँधीजी आस्तिक ईश्वरवादी होने के साथ-साथ पुरुषार्थी थे। वे घोषणा करते हैं – ''इस संसार में, जहाँ ईश्वर अर्थात् सत्य के सिवा कुछ भी निश्चित नहीं है, तो निश्चितता का विचार करना ही दोषमय प्रतीत होता है। यह सब जो हमारे आसपास दीखता है और होता है, वह अनिश्चित है, क्षणिक है। उसमें जो एक परम तत्त्व निश्चित रूप से छिपा हुआ है, उसकी झाँकी हमें मिल जाय, उस पर हमारी श्रद्धा बनी रहे, तभी जीवन सार्थक होता है। उसकी खोज ही परम पुरुषार्थ है।'' उनकी ईश्वर पर

शेष भाग पृष्ठ ४९९ पर

साधुओं के पावन प्रसंग (१०)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१९६१ में अद्वैत आश्रम वैलिंग्टन लेन से डिही एन्टाली रोड पर स्थानान्तरित हुआ। स्वामी योगात्मानन्द जी महाराज नए भवन का निर्माण-कार्य देखते और स्वामी गम्भीरानन्द जी से परामर्श लेते थे। आश्रम के प्रत्येक सेवाकार्य के प्रति उनका अथाह उत्साह था। आश्रम का प्रत्येक कार्य इस प्रकार बाँटा गया था कि किसी को भी दूसरों की गलतियाँ देखने का अवसर नहीं था।

१९६१ अथवा १९६० में काशीपुर आश्रम में प्रथम जनवरी पर आयोजित कल्पतरू उत्सव में स्वामी गम्भीरानन्द जी सभापति हुए। मैं उनका प्रवचन सुनने गया था। किसी प्रसिद्ध वक्ता (हरिपद भारती) ने अपने भाषण में कहा कि इस बार श्रीरामकृष्ण का आविर्भाव गृहस्थों के लिए हुआ है, संन्यासी तो ईश्वर-लाभ के लिए सब कुछ त्याग करते ही हैं, इत्यादि। मुझे स्पष्ट स्मरण है कि स्वामी गम्भीरानन्द जी ने अपने अध्यक्षीय व्याख्यान में कहा, 'श्रीरामकृष्ण गृहस्थों के लिए भी नहीं आए और संन्यासियों के लिए भी नहीं आए। जो पूरे मन-प्राण से ईश्वर-प्राप्ति करना चाहते हैं, उनके लिए ही वे आए थे।' क्या अद्‌भुत बोलने की शैली थी उनकी! स्वामी गम्भीरानन्द जी से वक्तृता के सम्बन्ध में यह बात सीखने को मिली कि जो विषय दिया है, उसी पर बोलना और व्यर्थ अप्रासंगिक विषय को बीच में न लाना।

गम्भीर महाराज सरल-सीधे व्यक्ति थे, प्रवचन के लिए जो विषय है, उसी पर बोलते। व्यर्थ अथवा अप्रासंगिक कुछ भी नहीं बोलते। निरर्थक बोलते नहीं थे और अतिश्योक्ति बिल्कुल भी पसन्द नहीं करते थे। थोड़ा-सा भी बढ़ा-चढ़ाकर बोलना वे पसन्द नहीं करते थे। एक दिन उन्होंने मुझे मजेदार किस्सा सुनाया, 'सुनो, एक व्यक्ति बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बोलता था। उसके मित्रों ने उससे कहा, 'तू बहुत लम्बी-लम्बी फेंकता है।' वह व्यक्ति बोला, 'जब मैं बढ़ा-चढ़ाकर बोलूँ, तब मुझे पीछे से थोड़ा कोंच देना।' एक बार बातों-बातों में उसने कहा, 'एक बार मैं बाघ का शिकार करने गया, वह बाघ अठारह फुट लम्बा था।' उसके मित्रों ने उसे कोंचा। वह व्यक्ति बोला, 'अरे, हमारे पास फीता नहीं था, तो भी पन्द्रह फीट तो था ही।' फिर से उसे थोड़ा झटका दिया। वह बोला, 'पन्द्रह फीट भले ही न हो, पर बारह फीट तो जरूर होगा।' इस प्रकार कम करते-करते वह छह फीट पर आ गया। फिर से उसे कोंचा। अन्त में वह बोला 'तो तुम क्या बोलना चाहते हो कि बाघ की पूँछ नहीं थी?'

गम्भीर महाराज अति संयमी और निरभिमानी थे। मैंने उनमें कभी भी मिथ्याभिमान नहीं देखा। कितना सुन्दर भाषण देते थे, कितनी ही पुस्तकें उन्होंने लिखी थीं, किन्तु कभी भी उन विषयों पर वे चर्चा नहीं करते थे। यदि कोई वैसा प्रसंग उठाता, तो वे टाल देते अथवा दूसरा विषय शुरू कर देते।

बेलूड़ मठ जाना होता, तो ट्राम अथवा बस से जाते। भण्डारी महाराज से वे एक रुपया लेते और लौटने के बाद बताते कि इतने पैसे खर्च हुए। उन्हें जब मायावती जाना होता, तो टैक्सी द्वारा हावड़ा स्टेशन पर पहुँचा देते थे। मठ की न्यासी बैठक में जब उन्हें जाना होता, तब पूजनीय स्वामी दयानन्दजी और स्वामी गहनानन्दजी उन्हें अद्वैत आश्रम आकर गाड़ी में बैठा लेते। उनका कोई विशेष भक्त नहीं था। अत्यन्त साधारण कपड़ों का व्यवहार करते थे। झोल-भात खाते। जिह्वा पर उनका अत्यन्त संयम था। 'जितम् सर्वं जिते रसे' – भागवत की यह उक्ति उन्होंने अपने जीवन में चरितार्थ की थी। १९६३ में मैं आश्रम के कार्यालय में काम करता था। अचानक भण्डारी महाराज के चले जाने से मुझे उनका काम देखना पड़ा। गम्भीर महाराज को आलू,

शेष भाग पृष्ठ ५१९ पर

शारदीय दुर्गापूजा का पौराणिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व

स्वामी अलोकानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

अनुवादक – रामकुमार गौड़, वाराणसी

शारदीया महापूजा या दुर्गोत्सव बंगाली लोगों का प्रधान उत्सव है। भारत के अन्यान्य स्थानों में 'नवरात्र' उत्सव मनाया जाता है। वहाँ प्रतिमा की पूजा प्रचलित रहने पर भी पद्धतिगत पृथकता है। जिस पूजा में स्थापन, पूजन, बलिदान और हवन, ये चार प्रमुख कार्य अनुष्ठित होते हैं, उसे महापूजा कहा जाता है। स्मति भट्टाचार्य रघुनन्दन ने 'हिन्दूकृत्यतत्त्व' के 'तिथितत्त्व' में (पृष्ठ ३६९) लिखा है –

''शारदीया महापूजा चतुःकर्ममयी शुभा।
तां तिथित्रयमासाद्य कुर्यात् भक्त्या विधानतः।
इति लिंगपुराणीये चतुःकर्ममयीत्यनेन चतुरवयवत्वेनाभिधानात् स्थापन-पूजन-बलिदान-होमरूपा।''

इस पूजा को कलियुग का अश्वमेध यज्ञ भी कहा जाता है। वस्तुतः इस पूजा का विधि-विधान, द्रव्यादि-संग्रह, कर्मकाण्ड का विस्तार अश्वमेध यज्ञ का ही स्मरण कराता है। शरद ऋतु में सर्वत्र प्रकृति की आद्याशक्ति का विशेष प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। बाह्य प्रकृति की इस तरह की अभिव्यक्ति के साथ-ही-साथ अन्तःप्रकृति में भी एक आनन्द का प्रकाश दिखाई पड़ता है। इसीलिए मनुष्य आगमनी संगीत के आलाप से देवी का आह्वान करता है।

'जगत् के आनन्दयज्ञ में सबका करूँ आह्वान।' शास्त्रकार भी (द्रष्टव्य तिथितत्त्व पृ. ५८९) कहते हैं –

''ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च सेवकैः।
एवं नानाम्लेच्छगणैः पूज्यते सर्वदस्युभिः।।

वास्तव में भी देखा जाता है कि इस विस्तृत आयोजन

के लिए लुहार, कुम्हार, डोम, माली, शबर आदि अनेक लोगों की सहायता की आवश्यकता होती है। इसीलिये यह सार्वजनिक पूजा होती है।

इस पूजा के प्रसंग में हम कल्पारम्भ, बोधन इत्यादि कुछ शब्दों से परिचित होते हैं और स्वभावत: इनके बारे में जानने की इच्छा होती है। इसीलिए हम इस निबन्ध में इन विषयों का विवेचन करने का प्रयास कर रहे हैं।

प्रतिमा में दुर्गापूजा के समय के सम्बन्ध में अनेक मतभेद रहने पर भी लगभग सहस्राधिक वर्षों पूर्व से प्रतिमा का प्रचलन देखा जाता है। **''प्रतिमीयते तुल्यते अनेन इति प्रतिमा''** – जिसकी मूर्ति है, उसकी तुलना इसमें पाई जाती है, इसीलिये प्रतिमा कहलाती है। ऋषिदृष्ट ध्यानमंत्र के अनुसार चित्रकार उस प्रतिमा का निर्माण करता रहता है। उस निर्मित प्रतिमा में मंत्र की सहायता से प्राण प्रतिष्ठा करके जीवन्त देवता समझते हुए पूजा की जाती है। धातु, पत्थर, मिट्टी से निर्मित प्रतिमा की बात इतिहास में पाई जाती है।

मार्कण्डेय पुराण (९१/७) में महाराज सुरथ और समाधि वैश्य के नदी-तट पर **'कृत्वा मूर्तिं महीमयीम्'** वाक्य बंगाल में आजकल प्रचलित मृण्मयी प्रतिमा का समर्थन करता है।

प्रतिमा-निर्माण के समय से ही अश्वमेध यज्ञ-तुल्य शारदीया महापूजा का शुभारम्भ हो जाता है। प्रतिमा-निर्माण के पूर्व मृत्तिका आहरण, अन्यान्य द्रव्यादि संग्रह भी इस पूजा के अंग हैं। रथयात्रा या जन्माष्टमी तिथि से यह प्रक्रिया आरम्भ होकर देवी-प्रतिमा के काष्ठासन पर बैठाकर देवी की आराधना से गुजरते हुए होती है।

कल्पारम्भ –'कल्प' शब्द का शब्दकोषगत अर्थ है पूजाविधि। अत: पूजाविधि का आरम्भ कल्पारम्भ है। दुर्गापूजा में सात कल्प हैं। (तिथितत्त्व पृ.३७८-७९)। भाद्र कृष्णानवमी से आश्विन शुक्लानवमी तक की तिथियों के बीच ये सातों कल्प होते हैं। जैसे - कृष्णानवमी, शुक्लाप्रतिपदादि, षष्ठ्यादि, सप्तम्यादि, अष्टम्यादि, केवल महाष्टमी केवल महानवमी। **''एवं च तत्रैव वक्ष्यमाणतत्तद्वचनात् कृष्णनवम्यादि, प्रतिपदादि, षष्ठ्यादि, सप्तम्यादि, महाष्टम्यादि महाष्टमी केवलमहानवमी पूजारूपा: अणुकल्पा उन्नेया:।''** इसमें षष्ठ्यादि कल्पारम्भ की पूजा सर्वाधिक प्रचलित है। किसी किसी वंशानुगत प्रथा में अन्य कल्पीय पूजा भी दिखाई देती है। आश्विन मास की शुक्ला षष्ठी तिथि से षष्ठ्यादि कल्पारम्भ की पूजा विहित है। बिल्लवृक्ष के नीचे दो घटों की स्थापना की जाती है। एक कल्पारम्भ का और दूसरा बोधन का। जिस दिन प्रात:काल में षष्ठी तिथि रहेगी, उस दिन कल्पारम्भ के घट में देवी और श्रीश्रीचण्डी की विशेष पूजादि करके 'षष्ठ्यान्तिथावारभ्य महानवमी यावत् इत्यादि, संकल्पानुसार श्रीश्रीचण्डीपाठ प्रारम्भ किया जाता है। (क्रियाकाण्ड वारिधि, पृ. ३५६-५७)

बोधन – 'बोधन' शब्द का अर्थ है, जागरण। शारदीया दुर्गापूजा में बोधन करने का नियम है। क्योंकि श्रावण से पौष मास तक सूर्य का दक्षिणायन काल रहता है तथा देवताओं का रात्रिकाल होता है। इस काल में देवताओं की पूजा करने पर जागरण की आवश्यकता होती है। श्रीरामचन्द्र इस समय रावण वध के लिए ब्रह्मा के विधान से अकाल बोधन करके देवी का जागरण करते हैं। यही पूजा परवर्ती काल में शारदीया महापूजा के रूप में प्रचलित हुई। चैत्र शुक्ला सप्तमी को अनुष्ठित वासन्ती पूजा के देवताओं के जागरण काल में होने के कारण इसमें बोधन नहीं किया जाता है।

यहाँ यह शंका होती है कि देवताओं की निद्रा और जागरण कैसा? हाँ, वे तो हमेशा जाग्रत रहते हैं। उनकी विराट सत्ता है, उन्हें इस सीमित पूजा की भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि 'चन्द्र-सूर्य उनकी आरती करते हैं।' किन्तु सीमित बुद्धि से उस विराट सत्ता की धारणा करना संभव नहीं है। इसीलिए हम अपने अभाव को उन पर आरोपित करके उसी भाव में भावित होने का प्रयास करते हैं। हम अज्ञान से आच्छन्न, सुप्त हैं, इसीलए हम सोचते हैं कि माँ भी सोई हैं। वस्तुत: उसी माँ को 'जागो माँ, जागो माँ' कहकर हम अपने को ही जगाने का प्रयास करते हैं। **'षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायं सन्ध्यासु कारयेत्' –** भविष्यपुराण के इस वचनानुसार (द्र. तिथितत्त्व,पृ. ३६) जिस दिन संध्याकाल में षष्ठी रहती है, उस दिन बोधन करणीय है। सप्तमी की पूर्वसंध्या को षष्ठी तिथि न रहने पर उसके भी पूर्वसंध्या में रहने पर उस दिन बोधन करना होगा। मंत्र में भी (द्र. क्रियाकांड वारिधि, पृ.-. ३१०) कहा गया है –**'अहमप्याश्विने षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयामि ते।'** कई बार दो संध्या में षष्ठी तिथि नहीं रहने पर शास्त्रकारों ने षष्ठी के प्रात: काल के बोधन का निर्देश दिया है। (पुरोहित दर्पण प. ८००) तिथितत्त्व में (पृ.४२४) रघुनन्दन भट्टाचार्य ने इस प्रकार कहा है – **''यदा तु पूर्वदिने सायंषष्ठी लाभ: परदिने सायं षष्ठीलाभस्तदा पूर्वेद्यु: बोधनं परदिने सायमामंत्रणम्। यदातूभयदिने सायं षष्ठ्यलाभ: तदा**

परदिने पूर्वाह्ने षष्ठ्यात् बोधनम्।।''

आमंत्रण – बोधन में देवी के जाग्रत होने पर इसके बाद इन्हें पूजा-ग्रहण करने के लिए आमंत्रण देना होगा। घर में अतिथि के आने पर जैसे उनकी अभ्यर्थना करके भोजनादि ग्रहण करने के लिये आमंत्रण देना होता है, वैसे ही बिल्ववृक्ष के निकट उनकी पूजा करके आमंत्रण दिया जाता है। (पुरोहित दर्पण - पृ.१६२)

ॐमेरुमन्दारकैलास-हिमवच्छिखरे गिरौ।
जातः श्रीफलवृक्ष त्वमम्बिकायाः सदा प्रियः।
श्रीशैलशिखरेजातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः।
नेतव्योऽसि मयागच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः।।

अधिवास – 'अधिवास' शब्द का शब्दकोषगत अर्थ है, मंगल द्रव्यादि द्वारा संस्कारित या शुद्धि। विवाहादि सामाजिक शुभकर्म के अनुष्ठान के पूर्व यह संस्कार या शुद्धि का कार्य किया जाता है। देवी का अधिवास कार्य बिल्व वृक्ष में, नवपत्रिका में और प्रतिमा में, तीन स्थानों में किया जाता है। पहले के युग में यज्ञ आदि क्रियाओं में तथा वर्तमान में पूजा के समय भी मौजूद द्रव्यादि को प्रोक्षण (पोंछना) आदि क्रिया द्वारा तथा मंत्र की सहायता से संस्कारित करके पूजा हेतु उपयोगी बनाया जाता है। उसी प्रकार यहाँ भी मृत्तिकादिगत दोष को शुद्ध करने के लिये यही अधिवास क्रिया अनुष्ठित होती है। इस कार्य के लिये एक बर्तन में मिट्टी, चन्दन इत्यादि (क्रियाकाण्ड वारिधि पृ. २४५) २२-२५ द्रव्यादि को सजाया जाता है। यह पात्र 'प्रशस्ति पात्र' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रत्येक सामान को मंत्र पढ़कर बिल्व वृक्ष और नवपत्रिका से स्पर्श कराया जाता है। जैसे - गन्ध द्वारा – **''अनेन गन्धेन अस्या भगवद्दुर्गायाः नवपत्रिकायाश्च शुभाधिवासनमस्तु।''** (पुरोहित दर्पण पृ. ७६१)। बाद में प्रतिमा में उस द्रव्य द्वारा **'अनेन गन्धेन अस्याः मृण्मयाः सपरिवारायाः श्रीभगवद् दुर्गायाः शुभाधिवासनमस्तु'** मंत्र से अधिवास किया जाता है। (वही पृ. ७६२)

नवपत्रिका - नवपत्रिका अर्थात् नौ पत्तों वाला पेड़ या पेड़ की डाल। ये सब औषधियों और देवी के एक-एक रूप के प्रतीक हैं। जैसे – केला - ब्रह्माणी, अखी - कालिका, हल्दी - दुर्गा, जयन्ती - कार्तिकी, बिल्व - शिवा, अनार - रक्तदंतिका, अशोक - शोकरहिता, मान - चामुण्डा, धान्य - महालक्ष्मी। मंत्र में भी (वही पृ. ७६३) कहा गया है –

ॐ कदली तरुसंस्थासि विष्णुवक्षस्थलाश्रये।
नमस्ते पत्रि त्वं नमस्ते चण्डनायिके।।
ॐ ह्रीं रम्भाधिष्ठात्र्यै नमः (वही पृ.७७२)

अतः अज्ञानवश उन्हें जो 'केले की पत्नी' या 'गणेश की पत्नी' कहा जाता है, वह गलत है। वस्तुतः वे पत्रिकावासिनी देवी हैं।

'ॐ ह्रीं नवपत्रिकावासिन्यै दुर्गायै नमः' इसी मंत्र से (वही पृ.७७३) वे देवी दुर्गा रूप में ही पूजित होती हैं। अतः पूजा के समय देवी का आविर्भाव तीन स्थानों – घट में, प्रतिमा में और नवपत्रिका में होता है।

महास्नान – 'महा' शब्द 'महत्' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जो स्नान 'बृहत्' होता है, उसे 'महास्नान' कहते हैं। वस्तुतः देवी के महास्नान में द्रव्यादि का आयोजन और अनुष्ठान का विस्तार इसके महत्त्व का स्मरण कराता है। राजद्वार, चौराहा, नदी के दोनों तटों, यज्ञशाला आदि कितने ही स्थानों की मिट्टी की आवश्यकता होती है। फिर, कितनी नदियों का जल, कितने तीर्थों का जल, वर्षा का जल, शिशिर-जल आदि अनेक प्रकार के जलों को जुटाया जाता है। सृष्टि की गोद की सभी वस्तुएँ उन्हीं एक आदिशक्ति से ही आई हैं। उन सभी सामग्रियों को महास्नान में उन्हें ही समर्पित करना होता है। नित्यशुद्ध देवी के अन्य स्नान की क्या आवश्यकता है? यह तो **'त्वदीयं वस्तु तुभ्यमेव समर्पये'** – उन्हीं की वस्तु उन्हीं को समर्पित करना है।

इस स्नान का महत्त्व समझने के लिए इन मंत्रों का अर्थ समझना आवश्यक है। विस्तार में न जाकर हम इस निबन्ध में सभी अर्थों को सन्निविष्ट न करके संक्षेप में कुछ उदाहरण दे रहे हैं। सातों समुद्र, सभी नदियाँ, पर्वत, स्वर्ग की जलधाराएँ – सभी देवी को स्नान कराने के लिए उपस्थित हैं। देवगण, मरुद्गण, लोकपालगण, नागगण सभी पर्वत, आकाशस्थ सप्तर्षि एवं वसुगण अष्ट कलश में आठ प्रकार के जल द्वारा, आठ प्रकार के रागों में, वाद्यादि के साथ स्नान करा रहे हैं। यह एक महान राजकीय कार्य है। अतः शारदीया यथार्थ में ही अश्वमेधयज्ञ के समान एक महापूजा है।

प्राणप्रतिष्ठा- प्रतिमा अनेक जड़ वस्तुओं को जोड़कर निर्मित की जाती है। उपादान जड़ होता है, इसीलिए प्रतिमा भी जड़ होती है। उसे पूजा हेतु उपयोगी बनाने के लिए, देवत्व प्रदान करने के लिए जो प्रक्रिया अपनाई जाती है,

वह प्राणप्रतिष्ठा है। किन्तु यह प्राणप्रतिष्ठा करने के लिये प्रतिष्ठाता का प्राण होना आवश्यक है। प्राण की बात कहने से श्रुति के (केनोपनिषद १/१ - **'केन प्राणः प्रथमः प्रैति'** प्रश्न के 'प्राण का प्राण' (वही २/२) परमात्मा की बात मन में आती है। अर्थात् साधक उसी प्राण में, परमात्मा में अधिष्ठित होंगे।

बेलूड़ मठ में कुमारी पूजा

''देवो भूत्वा देवं यजेत्।'' इसीलिए साधक को आत्मशुद्धि, देहशुद्धि आदि विविध क्रियाओं द्वारा देवता होकर देवता की पूजा करनी होती है। प्राणप्रतिष्ठा भी उसी तरह है। साधक अपने हृदय में उसी देवत्व का अनुभव करते हुए, अपनी चेतना में प्रतिमा को चेतन कर लेते हैं। प्राणप्रतिष्ठा-मंत्र में (पुरोहित दर्पण में) कहा गया है, **''अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च। अस्यै देवत्वसंख्यायै स्वाहा।''** उपर्युक्त मंत्र के उच्चारण द्वारा जड़ प्रतिमा जीवन्त देवी रूप में प्रकट होती है। तब हम उसी देवी की साक्षात् जीवन्त देवी-भाव से पूजा करते हैं। मिट्टी, घास-पुआल आदि को हम भूल जाते हैं। रामप्रसाद, कमलाकान्त और श्रीरामकृष्ण ने जिस प्रकार प्रतिमा में चिन्मयी माँ को देखा था, उसी तरह का भाव रखकर यदि हम पूजा करें, तो देवी उस पूजा को ग्रहण करती हैं एवं मानव मोदन पाता है - **''सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।''** (दुर्गासप्तशती, १/५७)

कुमारी पूजा – साधक देवी को केवल प्रतिमा में नहीं, जीवन्त विग्रह में देखना चाहता है। जीव वास्तविक रूप में शिव है। उसी शिव-दृष्टि से जीव की सेवा या पूजा से सेवक या पूजक को आत्यन्तिक शिवत्व की प्राप्ति होती है। कुमारी रूप में देवी की पूजा करके देवी की प्रसन्नता प्राप्त करना ही साधक को वांछनीय है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – ''देखो न कुमारी पूजा ! मल-मूत्र युक्त बालिकाएँ, उन्हें ठीक साक्षात् भगवती देखा।'' (श्रीश्रीरामकृष्ण कथामृत, अखण्ड, उद्बोधन कार्यालय, २०११, पृ.८१६) वे आगे भी कहते हैं, ''कुमारी पूजा क्यों की जाती है? सभी स्त्रियाँ भगवती की एक-एक रूप हैं। शुद्धात्मा कुमारी में भगवती का अधिक प्रकाश है।'' (वही, पृ. ३९१) कई लोग कहते हैं कि कुमारी पूजा वैदिक नहीं, अपितु तांत्रिक है। वस्तुत: दोनों में ही कुमारी पूजा का विधान रहा है। वेद में दुर्गागायत्री में कहा गया है, **''कात्यायान्यै विद्महे कन्यकुमार्यै धीमहि तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात्।''**

सन्धि-पूजा – 'सन्धि' शब्द का अर्थ है मिलन। व्याकरणशास्त्री कहते हैं, **'वर्णयोर्मेलनं सन्धिः'** – दो वर्णों के मिलन को संधि कहते हैं। लौकिक जगत में भी दो पक्षों के बीच सन्धि-स्थापन अर्थात् मिलन कराया जाता है। यहाँ दो तिथियों के मिलन-काल को सन्धि कहा गया है। उस समय की पूजा ही सन्धि-पूजा है। अष्टमी तिथि का अंतिम २४ मिनट तथा नवमी तिथि का प्रथम २४ मिनट – ये ४८ मिनट ही सन्धि-पूजा के समय के रूप में निर्दिष्ट हैं। इस समय देवी की चामुण्डा रूप में पूजा की जाती है।

मार्कण्डेयपुराणोक्त सप्तशती चंडी के सातवें अध्याय में (श्लोक सं.६) चण्ड-मुण्ड वध का वर्णन है। शुभ-निशुम्भ के दूत चण्ड-मुण्ड के पर्वतदेश में अधिष्ठिता देवी को ग्रहण करने हेतु अग्रसर होने पर क्रोध से देवी का मुखमंडल स्याही के रंग का हो जाता है। **'भृकुटि कुटिलात् तस्या ललाटफलकादद्रुतम्'** काली प्रकट हो गईं। कालिका पुराण में भी (६१/८५) कहा गया है, **''देव्या ललाटनिष्क्रान्ता या कालीति च विश्रुता।''** देवी चामुण्डा ही यहाँ काली के रूप में कही गई हैं। इस सम्बन्ध में पिच्छिलातंत्र का वचन (१४वाँ पटल) स्मरणीय है –

अष्टम्याः शेषदण्डै तु नवम्याः पूर्व एव च।
अर्धरात्रे महाघोरा आविर्भूता महीतले।।
तस्यास्तु दक्षिणाकाली दक्षयज्ञविनाशिनी।
पूजनीया साधकेन्द्रैर्महाविभवविस्तरैः।।

इस सन्धि-क्षण में बलिदान का विधान है। यह महापूजा का तृतीय कर्म है। नवमी के दिन भी बलिदान का विधान है। कई लोग पशुबलि देते हैं। पशु के विकल्प के रूप में कुम्हड़े आदि फलों की भी दी जाती है। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेद से तीन प्रकार की पूजा होती है। स्मति

भट्टाचार्य रघुनन्दन ने 'तिथितत्त्व' में स्कन्द पुराण और भविष्य पुराण के वचनों को उद्धृत करके कहा है –

शारदीया चंडिकापूजा त्रिविधा परिगीयते।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु।।
सात्त्विकी जपयज्ञाद्यैर्नैवेद्यैश्च निरामिषैः।
माहात्म्यं भगवत्याश्च पुराणादिषु कीर्तितम्।।
पाठस्तस्य जपः प्रोक्तः पठेद् देवीमनास्तथा।
राजसी बलिदानेन नैवेद्यैः सामिषैस्तथा।।
सुरामांसाद्युपहारैर्जपयज्ञैर्विना तु या।
बिना मंत्रैस्तामसी स्यात् किरातानां च सम्मता।।

श्रीमद्भगवदगीता में श्रीभगवान ने भी सत्तादि-भेद से तीन प्रकार के यज्ञ की बात कही है।

'बलि' शब्द का अर्थ है, उपहार। जीव का अहंकार, काम-क्रोध इत्यादि स्व-स्वरूप के बोध में बाधक है। इन सभी को विसर्जित कर देना ही बलि का तात्पर्य है। तंत्रशास्त्र में है – **'कामक्रोधौ छागवाहौ बलिं दत्वा प्रपूजयेत्।'** अर्थात् कामक्रोध रूपी बकरे और भैंसे की बलि देकर पूजा करनी चाहिए। इस पूजा के क्षण से भक्तजन माँ के चरणों में अपने-अपने अन्तर में स्थित चंड-मुंड रूपी काम-क्रोधादि को विसर्जित करके उस महाशक्ति के कृपाप्रार्थी होकर रहते हैं।

श्रीदुर्गासप्तशती में (१३/१२) आया है कि महाराज सुरथ और समाधि वैश्य नदी-तट पर देवी की पूजा करके **'ददतदुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम्'** – शरीर का रक्तरंजित बलिदान किया। जीव के शरीर में रक्त मूल्यवान वस्तु है। उसका दान अर्थात् आत्मनिवेदन किया। देवी के पास सम्पूर्ण रूप से शरणागत होना ही बलि का तात्पर्य है।

महापूजा के अन्तिम चरण में 'हवन' होता है। नवमी पूजा के अन्त में यह कार्य अनुष्ठित होता है। देवी के सम्मुख उनके नाम से अग्निस्थापन करके श्रद्धा निवेदित की जाती है। 'हवन' एक पूर्णतः पृथक् पूजा है। पहले प्रतिमा में, घट में, जो पूजा अनुष्ठित हुई थी, उसका ही इस समय अग्नि में अनुष्ठान होता है। वैदिक युग के विकल्प के रूप में यह 'हवन' कार्य होता है। अग्नि को साक्षी मानकर कल्पारम्भ में संकल्पित कार्य की समाप्ति की घोषणा दक्षिणा-दान के माध्यम से की जाती है।

अन्त में दशमी के दिन विजया, विसर्जन, निरंजन होता है। पूजकों ने हृदय से जिस देवी की प्रतिमा में, घट-स्थापन करके इन कुछ दिनों तक बाहर की पूजा निवेदित की थी, विसर्जन या निरंजन कार्य के माध्यम से उनको अपने हृदय में वापस लाकर वे सहज होते हैं। जिस निरंजन सत्ता अर्थात् मन, वचन से अगोचर भावातीत सत्ता से उनकी विशेष अभिव्यक्ति हुई थी, उसमें ही फिर से विलीन होना ही इस अनुष्ठान का तात्पर्य है। विसर्जन मंत्र (पुरोहित दर्पण, पृ. ७८१) में कहा गया है –

गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चंडिके।
यत् पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे।।
गच्छ गच्छ परं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः।
संवत्सरव्यतीते तु पुनरागमनाय च।।

प्राणप्रतिष्ठा के समय पूजक ने जिस देवी को हृदय से बाहर प्रतिमा में स्थापित किया था, उन्हें पुनः हृदय में वापस लेकर कहते हैं।

तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि।
यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि।।
उत्तरे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतवासिनि।
ब्रह्मयोनि समुत्पन्ने गच्छ देवि ममान्तरम्।।

श्रीरामकृष्ण के रसद्दार और सेवक मथुरानाथ विश्वास ने जानबाजार में दुर्गापूजा का आयोजन किया था। श्रीरामकृष्ण ने वहाँ उपस्थित रहकर इस पूजा के आनन्द को और भी बढ़ा दिया था। अन्ततः विजयदशमी के दिन विसर्जन का मंत्र पढ़ने के लिए पुरोहित द्वारा मथुरानाथ की अनुमति चाहने पर वे विसर्जन करने के प्रति नाराज हो गए। इधर समय बीतता जा रहा था। मथुरानाथ का आदेश था जैसे पूजा चल रही है, वैसी ही चलेगी। दूसरी ओर

अष्टाहे विसृजेच्छक्रं तद् अब्देन तु पार्वती।
न्यूनाधिक्यं न कर्तव्यं राज्ञो राष्ट्रधनक्षयात्।।

(लिंगपुराण)

– इस शास्त्र-वाक्य के अनुसार दशमी को देवी का विसर्जन कर देना चाहिए। भक्ति और शास्त्रविधि के विरोध में श्रीरामकृष्णदेव ने मथुर को जो कहा था, विसर्जन का तात्पर्य समझने के लिए वह स्मरणीय है। मथुर ने श्रीरामकृष्ण देव को जब बताया कि वे जीवित रहते माँ को विसर्जित नहीं कर सकेंगे, तब श्रीरामकृष्णदेव उनसे कहते हैं – "अरे ! यही तुम्हारा भय है। तो माँ को छोड़कर रहने

शेष भाग पृष्ठ ५०२ पर

मन से शुद्धि और मन से अशुद्धि है

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, पर जीवन्त प्राणियों में ब्रह्म का अधिक प्रकाश है। पत्थर में कम प्रकाश है। जो देखता है और जो दिखता है, वह सब ब्रह्म है। ब्रह्म के रूप में स्थित होते हो, तो ब्रह्म है ही नहीं। जहाँ कर्तव्य नहीं रहता, वह भगवान है। इसलिए हम लोगों को गुरु की आज्ञा का पालन करके ही काम करना है। कर्म के परिवर्तन से तुम्हारे जीवन में परिवर्तन नहीं आयेगा, भाव के परिवर्तन से तुम्हारे जीवन में परिवर्तन आयेगा। इसीलिए हमारा कर्म और उसके प्रति भाव अच्छा होना चाहिए। भगवान को सतत पकड़े रखो। जिसके जीवन-रथ के सारथी कृष्ण भगवान हैं, उसकी कभी हार नहीं होती। लोकाचार के अत्याचार से मन को विचलित नहीं करना है। उन सबके चक्कर में नहीं पड़ना है। मन से ही शुद्धि और अशुद्धि होती है। हम लोग छुआछूत के चक्कर में ईश्वर को भूल जाते हैं। ये सब छोटी-छोटी बातों को लेकर मनको विचलित नहीं करना है। इस प्रकार करने से मन शुद्ध नहीं होगा। छुआछुत ये सब मानसिक संकीर्णता के कारण है। उसी भाव में ही तुम्हारा मन भर जायेगा और भगवान को भूल जाओगे। शरीर स्वच्छ रखो। सफाई पर ध्यान दो। लेकिन मन को शुद्ध रखो। हमारा मन अशुद्ध रहने से सब जगह अशुद्ध ही दिखता है। अशुद्ध दुश्चरित्र लोगों का संग करना ये असल में अशुद्धि ही है। अगर मन अशुद्ध हो गया, तो माँ और ठाकुरजी के चरण को स्पर्श करना, तो शुद्ध हो जाओगे। श्रीमाँ शुद्धता की, पवित्रता की प्रतिमूर्ति हैं। श्रीमाँ का नाम लेने से सब शुद्धि हो जाती है। मन से ही शुद्धि और मन से ही अशुद्धि है। जिसका मन शुद्ध है, उसके मन में सब जगह शुद्धता ही दिखती है। पूर्व जन्म की अनेक तपस्या रहने से मन में अशुद्धि का भाव नहीं रहता। पूर्व जन्म में भगवान का नाम-जप किया है, सत्संग किया है, साधुसंग किया है, इसलिये इस जन्म में मन शुद्ध हुआ है। पूर्व जन्म के पुण्य से ही हमें शुद्ध मन मिला है। साधना के बिना शुद्धि नहीं होगी। सत्संग करना होगा। बहुत तप, ध्यान करने पर मन शुद्ध होता है।

गृहस्थी में हो, तो सबेरे जल्दी उठकर भगवान का नाम जप करो। उससे मन शुद्ध होगा। तुम्हें चैतन्य ज्ञान प्राप्त होगा। भगवान से प्रार्थना करने पर धीरे-धीरे अशुद्धि चली जायेगी और मन शुद्ध होगा। जो लोक परमार्थ की अधिक चिंता करते हैं, उनके मन में ही अधिक शुद्धि आती है। तब वही मन भगवान को पकड़ लेता है। इसलिये मन से संसार की आसक्ति छोड़नी चाहिए। जब तुम्हारे मन में भगवान की कृपा होगी, तब उसी मन में भगवान का दर्शन होगा और उसी मन को लेकर आगे बढ़ोगे। भगवान का नाम लोगे, तभी तुम्हारा मन और शरीर पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाएँगे। तुम समस्त वासनाओं से मुक्त हो जाओगे।

माँ महिलाओं को हमेशा बोलती थीं, कभी खाली मत बैठना। खाली रहने से मन अशुद्ध हो जाता है। यदि तुम खाली रहोगी, तो तुम्हारा मन इधर-उधर भटकता रहेगा। मन में अशान्ति आयेगी। मन में अशान्ति आने से संसार में सुख से नहीं रह पाओगी। इसलिए भगवान का नाम-जप करते रहो। लोग बोलते हैं, हम इतना जप करते हैं, भगवान से प्रार्थना करते हैं, तो भी हमारा कुछ नहीं होता।

जितना हमारे हाथ में है, जैसे सत्संग करना, सद्ग्रंथों का अध्ययन करना और सच्चर्चा करना, इतना तो हम करें। बाकी सब भगवान देखेंगे। भगवान के पास रो-रो कर प्रार्थना करनी चाहिए कि प्रभो मेरी जितनी शक्ति है, मैं कर रहा हूँ, अब आप ही कृपा कीजिए। भगवान मेरा मन बहुत चंचल हो गया है, उसे शान्त कर दो। मेरे मन को अपने चरणों में लगा दो। ऐसी प्रार्थना करते रहें।

साधक को कभी भी किसी के प्रति मन में राग, द्वेष, ईर्ष्या नहीं रखनी चाहिए। क्योंकि मन सबसे अधिक दूषित इन्हीं से होता है। रोज सबेरे उठकर और सोने के पहले भगवान का नाम जप करें और उनसे प्रार्थना करें – प्रभु, हमारा मन हमारे वश के बाहर है, हम कितना समझाते हैं पर वह सुनता नहीं है। अब तुम्हीं कृपा करके मेरे मन को ठीक कर दो। ○○○

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (७/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

प्रभु ने हँसकर पूछा, आज तक तो सुनते थे कि संत ऊपर उठाता है, भरत इतना बड़ा संत, उसने तुम्हें नीचे गिरा दिया? उन्होंने कहा, प्रभु अगर उसे नीचे गिरना कहें, तो उससे बढ़ कर ऊपर उठना क्या हो सकता है, कुछ समझ में नहीं आता। क्या? बोले, मैं आपके नाम का जप करता हूँ, आपके रूप का दर्शन करता हूँ। आपकी कथा सुनता और सुनाता हूँ। चार विग्रह कहे जाते हैं – नाम, रूप, लीला और धाम। मैं औषध लेकर चला आता, वंचित रह जाता आपके धाम से, श्रीभरत के उस बाण ने अयोध्या के धूल में मुझे गिरा दिया, जिसमें गिरकर आपको आनन्द आता है –

कौसल्या जब बोलन जाई।

ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई।। १/२०२/७

धूसर धूरि भरें तनु आए।

भूपति बिहसि गोद बैठाए।। १/२०२/९

कितना बड़ा सौभाग्य है! गिराया भी तो कहाँ? बोले अयोध्या में। उसको क्या गिरना कहें, जहाँ पर आप दौड़ते-दौड़ते धूलभरे शरीर से पिता की गोद में जा बैठते थे।

प्रभु ने मुस्कराकर फिर पूछा, तीसरा अनुभव तुम्हें क्या हुआ? बोले – महाराज, जब भरतजी ने यह कहा कि तुम मेरे बाण पर बैठ जाओ, यह तुम्हें शीघ्र ही प्रभु के पास पहुँचा देगा। तो मैं चकित रह गया। क्या? बोले, आप तो संसार में अद्वितीय योद्धा हैं, आप से बढ़कर धनुर्धर संसार में कोई नहीं है। आपका धनुष, आपका बाण अद्वितीय है। अस्त्र-शस्त्रों के संदर्भ में मुझे भी वरदान मिला हुआ है। लेकिन प्रभु, सारे बाण मैंने देखे-सुने पर ईश्वर के पास पहुँचानेवाला भी कोई बाण हो सकता है, यह बात तो पहली बार सुनने को मिला। धन्य हैं श्रीभरतजी महाराज!

श्रीभरत के पास कौन-सा बाण है? वह कृपा का ही बाण है। इसका अभिप्राय है कि अब तक साधना के माध्यम से यात्रा चल रही थी। जो कार्य मानो साधना के द्वारा इतना परिश्रम पूर्वक होता है, वह कृपा के बाण से सरल हो जाता है इसीलिए भरत जी ने कितना सुन्दर कहा –

चढ़ु मम सायक सैल समेता।

पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता।। ६/५९/६

आश्चर्य हुआ, इतना बड़ा शरीर, इतना बड़ा भार और एक बाण पर जाने की बात। अरे वह तो कृपा का बाण है। जैसे कोई व्यक्ति घर जाने के लिए उतावला रहता है। कृपानिकेत के पास यह कृपा नहीं ले जायेगी, तो कौन ले जायेगा? कृपा के बाण पर आरूढ़ हो जाइए, कृपानिकेत तो स्वयं कृपा करेंगे। इतने आनन्दित हुए हनुमानजी, जब चलने लगे, तो गोस्वामीजी ने कहा – **भरत बाहु बल सील गुन**। इसके साथ-साथ प्रभु ने पूछा, पहली यात्रा और दूसरी यात्रा में क्या अन्तर था? उन्होंने कहा कि पहली यात्रा में मैंने समुद्र को पार कर लिया था, किशोरीजी का पता लगाने के लिए गया था, पर दूसरी यात्रा में समुद्र को पार नहीं कर पाया और जिस समुद्र को पार नहीं कर पाया, वह भरत समुद्र है –

प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर। २/२३८/०

उस समुद्र को पार कर लिया, पर इस भरत-समुद्र को पार नहीं कर सका। क्योंकि –

भरत बाहु बल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।

(६/६०/ख)

प्रभु ने हनुमानजी को हृदय से लगा लिया। हनुमान तुम धन्य हो। अभिमान के समुद्र को पार गये और प्रेम के समुद्र में डूब गये। यही धन्यता है, इसी में धन्यता है ! प्रेम के समुद्र को पार करने में नहीं, डूब जाने में ही सार्थकता है, धन्यता है।

इसका अभिप्राय है कि साधना करते समय हनुमानजी कितने आनन्दित हैं! प्रभु ने भरतजी का दर्शन कराकर कैसा

कौतुक किया है कि भक्त के मन में भविष्य में भी कोई भ्रम न आ जाए, अभिमान कहीं आस-पास भी न भटकने पाए, उसकी छाया भी न पड़ने पाए! यह कृपा हनुमानजी को गद्गद कर देती है। यह कृपा का जो तत्त्व है, जब साधक के मन में सब कुछ होते हुए भी इसकी धारणा दृढ़ हो जाय, तो वह सचमुच प्रभु की कृपा के सच्चे आनन्द का अधिकारी हो जाता है।

इसीलिए विभीषण जब आते हैं, तो स्वभावत: बन्दरों ने रोका। साधन तो रोकेगा ही। साधन के रूप में द्वार पर बन्दरों ने रोका, कौन हैं आप, क्या परिचय है आपका? बेचारे वे क्या कहते हैं, बोले – मैं तो रावण का भाई हूँ। क्या रावण के भाई हो? रुक जाओ, ऐसे नहीं जा सकते। साधन तो रोकेगा ही। साधन तो योग्यता देखेगा, कौन अन्दर जा सकता है? तब क्या हुआ? एक बन्दर ने जाकर सुग्रीव के कान में कहा – रावण का भाई आया हुआ है। बाहर खड़ा है और कहता है – मैं भगवान के शरण में जाना चाहता हूँ। प्रभु ने दृश्य को देखा, सुग्रीव ही सारे साधनों के स्वामी हैं। प्रभु ने पूछा क्या समाचार है? सुग्रीव ने तुरन्त कहा –

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई।

आवा मिलन दसानन भाई।। ५/४२/४

बोलने की कला के द्वारा अपना विरोध प्रगट कर दिया। रावण का भाई भी नहीं कहा, क्या कहा? दसानन भाई। इसका अर्थ है कि जब कोई व्यक्ति अपनी बात कहकर बदल जाए, तो कहावत है कि एक मुँह है कि दो मुँह है? उन्होंने कहा कि महाराज, यह इतना अविश्वसनीय है कि दो नहीं, दस मुहँवाले का भाई है। उसके शब्दों पर बिलकुल मत जाइए। मुँह से क्या कह रहा है और मन में क्या है? अब साधना और कृपा का संवाद प्रारम्भ हुआ। प्रभु ने कहा –

कह प्रभु सखा बुझिऐ काहा। ५/४२/५

आया हुआ है, तो इसमें पूछने की क्या बात है? सुग्रीव ने कहा – **कहइ कपीस सुनहु नरनाहा।। ५/४२/५**

उन्होंने कहा, महाराज, मैं बन्दरों का राजा हूँ, आप मनुष्यों के राजा हैं। क्या हमलोगों को इस तरह से बातचीत करनी चाहिए, जिसमें राजनीति की गंध भी न हो? क्या राजनीति का यह नियम है कि जो आया हो, उसे आने दें? पहले उसे परखना राजनीति का स्वभाव है कि कौन व्यक्ति विश्वस्त है, कौन व्यक्ति अविश्वस्त है। उससे कैसे व्यवहार करें। साधन की कसौटी में तो ऐसा ही होगा। साधन तो यही कहेगा कि यह रावण का भाई है, तो इतने दिनों तक रावण ने पाप किया, तो यह उसके साथ में था कि नहीं था? अब आया है, तो इतनी देर से क्यों आया? तर्क-वितर्क उन्होंने किया। महाराज, क्या रावण को आप इतना मूर्ख समझते हैं कि रावण अपने विद्रोही भाई को आपके पास आने की छूट दे सकता है? प्रभु ने हँसकर पूछा, मित्र तुम्हें कैसा लगता है? बोले महाराज, सीधी-सी बात है।

जानि न जाइ निसाचर माया।

कामरूप केहि कारन आया।। ५/४२/६

भेद हमार लेन सठ आवा।

राखिअ बाँधि मोहि अस भावा।। ५/४२/७

रावण ने इसको भेदिया बनाकर भेजा है, उसने सुन लिया होगा कि आप अच्छे पारखी नहीं हैं, भोले-भाले हैं। उसने कहा होगा कि तुम जाओ शरणागत बनकर और वे तुम्हें शरणागत मानकर स्वीकार कर लेंगे, वहाँ से तुम उसका भेद मुझे भेजते रहना। प्रभु तो बड़े उदार हैं। वे साधनों का कभी तिरस्कार नहीं करते हैं। वे तिरस्कार इसलिये नहीं करते कि जितने साधक हैं, वे जिन दूसरों में कमी निकाला करते हैं, उन कमियों से वे स्वयं मुक्त नहीं होते। साधन तो कभी दोष शून्य हो ही नहीं सकता। साधन जो भी होगा, कोई ऐसा साधन क्रिया रूप में या किसी रूप में हो, ऐसा हो ही नहीं सकता, जिसमें कोई कमी न हो। सुग्रीव अगर यह कहते हैं कि रावण का भाई है, तो भगवान यह कह सकते थे कि तुम भी तो बालि के भाई थे। पर प्रभु पुराने इतिहास को नहीं याद करते, भुला देते हैं। वे कहते हैं –

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। ५/४२/८

नीति की दृष्टि से यह बिलकुल ठीक है और सामाजिक सन्दर्भ में यही बात आती है। कई बार तो यह कहते हैं, कई ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनकी यह मान्यता है कि भगवान की कृपा का प्रचार करके इस देश में कृपा के नाम पर बड़ा अनर्थ किया गया। लोगों के मन में यह आस्था उत्पन्न किया जाना चाहिए कि व्यक्ति अपने कर्म का ही परिणाम भोगता है। उसको सदाचार में प्रतिष्ठित करना चाहिए। कृपा की बात तो सर्वथा निरर्थक है। यह मान्यता है और पहले भी थी। **(क्रमशः)**

भगवान श्रीरामकृष्णदेव की प्रासंगिकता

स्वामी गौतमानन्द

(स्वामी गौतमानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ चेन्नई के अध्यक्ष हैं। उन्होंने यह व्याख्यान ८ मई, २०१५ को विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में दिया था, जिसका अनुलिखन सुश्री क्षिप्रा वर्मा ने किया है। - सं.)

ओम् स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ।।

मेरे प्रिय स्वामी सत्यरूपानन्दजी, अन्यान्य साधुगण, कर्मचारीगण एवं मेरे रायपुर के भाइयो और बहनो!

स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने मेरी जो इतनी प्रशंसा की, तो मुझे एक विनोद की घटना याद आ गई। एक आदमी ने ऐसे ही रंगमंच से दूसरे एक आदमी की बड़ी प्रशंसा की, तब श्रोताओं में से एक आदमी ने पूछा – आप जिसकी प्रशंसा कर रहे थे, वह गुजर गया क्या? आमतौर पर जीवित व्यक्ति में कुछ दोष रहते हैं। जब वह गुजर जाता है, तभी उसकी पूरी प्रशंसा होती है। मैं सोच रहा था कि यहाँ मेरी इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, तो क्या कहूँ अभी? आज मैं इस सभा में आकर बड़ा आनन्दित हूँ। मैं जब भी रायपुर आता हूँ, तो ओमप्रकाश वर्मा को पता लग जाता है, वह तुरन्त मेरे पास आकर विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा में आने के लिए निमंत्रित कर देता है। यहाँ आकर मुझे भी बड़ा आनन्द होता है।

आज का विषय है – 'श्रीरामकृष्ण देव की प्रासंगिकता'। 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' को लिखते समय मास्टर महाशय श्रीमहेन्द्रनाथ गुप्त ने निम्नलिखित भागवत के श्लोक से प्रारम्भ किया –

तव कथामृतं तप्त जीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहं
श्रवणमंगलं श्रीमदाततम्
भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः ।।

इस श्लोक का अर्थ है – 'प्रभो, तुम्हारी लीलाकथा अमृतस्वरूप है। तापतप्त जीवों के लिए तो वह जीवनस्वरूप है। ज्ञानी महात्माओं ने उसका गुणगान किया है। वह पापपुंज को हरनेवाली है। उसके श्रवणमात्र से परम कल्याण होता है। वह परम मधुर तथा सुविस्तृत है। जो तुम्हारी इस प्रकार की लीलाकथा का गान करते हैं, वास्तव में इस भूतल में वे ही सर्वश्रेष्ठ दाता है।' इसी प्रकार भगवान श्रीरामकृष्ण के चिन्तन से, उनके कीर्तन से दुख दूर हो जाते हैं। ज्ञानी लोग उनकी बातों की प्रशंसा करते हैं। उनकी वाणी सुननेवालों के पाप नष्ट होते हैं। उनकी वाणी सुनने से आनन्द मिलता है। सभी सम्प्रदायों में बड़े पुण्यवाले ही इनका गुणगान और इनकी पूजा करते हैं। श्रीरामकृष्ण ऐसे महान अवतार पुरुष हैं। उनके बारे में कहना बहुत कठिन है। एक बार स्वामी विवेकानन्द जी से मैक्समुलर ने अनुरोध किया – आप भगवान श्रीरामकृष्ण के बारे में हमें बताइये, ताकि हम उनका जीवन-चरित्र लिख सकें। तब स्वामी विवेकानन्द ने कहा - आप मुझे इस हिमालय पर्वत को हिला देने को कहिये, मैं कर सकूँगा, मैं विश्व को हिला दूँगा, परन्तु रामकृष्ण के बारे में बताना बहुत कठिन है। इसलिये मैं उनके बारे में कुछ नहीं बता सकूँगा। ऐसे महापुरुष हैं श्रीरामकृष्ण !

अवतार पुरुष आते हैं 'गुरु' के रूप में। गुरु सबको सब विद्या देने के लिये आते हैं। हम जिनको शिक्षक कहते हैं, वे सब हमें ऐहिक विद्या, भौतिक जीवन की विद्या देते हैं। जो अवतार पुरुष आते हैं, वे सम्पूर्ण विद्या हमें देते हैं। इस संसार में कैसे हमें आनन्द से जीना चाहिये, वे उसका मार्ग बताते हैं और भगवान का अनन्त, असीम आनंद कैसे प्राप्त करें, उसका मार्ग भी बताते हैं। इसलिए उन्हें परम गुरु कहा जाता है। सभी अवतार पुरुष गुरु ही हैं। ऐसे परम गुरु महापुरुष भगवान श्रीरामकृष्ण हमारे बहुत नजदीक १८८६ में, आज से लगभग १३० साल पहले रहे। उनकी महिमा अभी हम नहीं समझ पाते हैं। कुछ साल पहले गांव-गांव में लालटेन रहता था। उसको जलाकर उसके प्रकाश में

हम पढ़ते थे। लालटेन के नीचे तले में अंधेरा रहता था, वहाँ रोशनी नहीं मिलती थी। लालटेन से थोड़ी दूर प्रकाश मिलता था और हम पढ़ते थे। उसी तरह ये महापुरुष इतने बड़े लालटेन हैं। इनके नजदीक रहने वाले अंधकार में ही रहेंगे। हमें दूर एक-दो-तीन सदी जाना चाहिये, तब उनकी महिमा को समझ सकेंगे।

श्रीरामकृष्ण अपने बारे में यह उदाहरण देते थे। आप लोगों में से कई लोगों ने दक्षिणेश्वर में भगवान श्रीरामकृष्ण का कमरा देखा होगा। उस कमरे से करीब २००-३०० गज या मीटर दूर पर जंगल जैसी जगह है। वहाँ वे शौच के लिये जाते थे। वे कहते हैं – मैं शौच से वापस आ रहा था, तभी सुना कि एक मेढ़क टें-टें-टें आवाज कर रहा है। तब मैंने जाकर देखा कि कहाँ है यह मेढ़क और क्या हुआ है? देखा कि सामने ही एक बढ़े मेढ़क को एक छोटे-से सांप ने पकड़ लिया है। अब मेढ़क भाग नहीं सकता है। सांप बहुत छोटा है। उसकी इतनी शक्ति नहीं है कि वह मेंढक को निगल सके। वह न निगल सकता है और न मेंढ़क भाग सकता है। तब ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने एक बात कही। उन्होंने कहा – अगर यह नाग होता, विषैला सांप होता, तब यह मेढ़क दो-तीन पुकार में समाप्त हो जाता। इसी तरह सद्‌गुरु के हाथ में जब शिष्य पड़ता है, तब शिष्य का अहंकार तीन पुकार में समाप्त हो जाता है। उसके बाद शिष्य का अहंभाव नहीं रहता है। वह भी परमहंस हो जाता है। अहंकारहीन, ब्रह्मज्ञ और ज्ञानी हो जाता है। यही श्रीरामकृष्ण देव का परिचय है। जो भी उनके पास, उनके सामने जाते हैं, उन्हें जीवंत स्वरूप में जानते हैं, उनकी महिमा को जानते हुए उनके चरित्र को पढ़ते हैं, उसमें आनन्द लेते हैं, उनका चिन्तन-मनन-पूजन करते हैं, उनका सब काम धीरे-धीरे पूरा हो जाता है। जैसे ही अहंभाव जाता है, भगवान की भक्ति आने लगती है। जहाँ अहंकार है, वहाँ भगवान नहीं रहते। जैसे ही अहंकार कम होता जाता है, भगवद् भाव अन्दर आता है, भक्ति आती है, ज्ञान आता है। आप स्वयं अनुभव करने लगेंगे। भगवान श्रीरामकृष्ण कहते हैं "जब ज्ञान होता है, तब अहंभाव अपने आप चला जाता है।" मैं नहीं, तू-तू कहो। वही सब कुछ है। तू-तू कहने से मैं-मैं सब समाप्त हो जाता है। श्रीरामकृष्ण के पास आनेवाले की यही अवस्था होती है। वे लोग ब्रह्मज्ञान की ओर, परमात्मा के ज्ञान की ओर बड़ी सुविधा से, निर्भीकता से आगे बढ़ते चले जाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी एक बार एक भक्त के घर गये। वे भक्त थे नव गोपाल घोष। वे श्रीरामकृष्ण के बड़े भक्त थे। वे एक आदर्श साधारण गृहस्थ थे। उनका एक छोटा-सा व्यापार था। वे और उनकी पत्नी श्रीमती घोष दोनों भक्त थे। वे लोग श्रीरामकृष्ण के पास बीच-बीच में जाते, उनकी कृपा प्राप्त करते और घर आ जाते। मैं इसीलिये उन्हें आदर्श गृहस्थ भक्त कहता हूँ। एक बार नवगोपाल घोष के ऊपर श्रीरामकृष्ण देव की बड़ी कृपा हुई। श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद, स्वामी विवेकानन्द जी अमेरिका गए और वहाँ से विश्वप्रसद्धि होकर भारत वापस आए। तब नवगोपाल घोष ने स्वामी विवेकानन्द से कहा – "महाराज, आप हमारे घर आइये और श्रीरामकृष्ण देव के पत्थर की मूर्ति की प्रतिष्ठा करके अनुगृहीत कीजिए।" स्वामी विवेकानन्द जानते थे कि नवगोपाल घोष को भगवान श्रीरामकृष्ण की कृपा प्राप्त हुई है। बड़े भक्त हैं। ठीक है, राजी हो गये। स्वामी विवेकानन्द जी उनके यहाँ गये। वहाँ पूजा हुई, कीर्तन भजन आदि हुआ।

स्वामी विवेकानन्द जी ने श्रीरामकृष्ण देव के पादपद्मों में साष्टांग प्रणाम करने के बाद, सारदा माँ को प्रणाम किया। जब प्रणाम करके उठते हैं, तब उन्हें याद आता है कि श्रीरामकृष्ण देव को प्रणाम करने के बाद, प्रणाम-मंत्र बोलना चाहिये। तांत्रिक पूजा में हमेशा जब किसी देवता को प्रणाम करते हैं, तब प्रणाम-मंत्र बोला जाता है। उस समय तक किसी ने कोई मंत्र नहीं बनाया था। स्वामी विवेकानन्द प्रणाम करके उठ रहे हैं, तभी उनको याद आया, अब तो प्रणाम मंत्र कहना चाहिये। तब उनके हृदय से स्वत: ही ऐसा अद्‌भुत प्रणाम मंत्र निकल गया –

ॐ स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ।।

यह मंत्र, वेद-मंत्र के समान है। यह ऋषिवर विवेकानन्द जी, जो सप्तर्षियों में उत्तम ऋषि थे, ऐसे ऋषि के हृदय से स्वत: स्फुरित हुआ है। इस मंत्र में अवतारवरिष्ठाय श्रीरामकृष्ण देव को अवतारों में श्रेष्ठ होने का प्रमाण पहली बार स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा दिया गया। आज श्रीरामकृष्ण देव की प्रासंगिकता पर विचार करते समय उनके अवतार-वरिष्ठ स्वरूप को जानने की बड़ी आवश्यकता है।

आज सबसे समन्वय की आवश्यकता है। 'समन्वय' एक महत्त्वपूर्ण शब्द है। हम पर बड़े-बड़े संकट आ रहे हैं। इसको चुनें कि उसको चुनें? इसको देखें, कि उसको देखें? इसको सुनें कि उसको सुनें? छोटे-छोटे बच्चे के मन से लेकर बड़े-बड़े विद्वानों के मन में भी गड़बड़ी मची रहती है कि

कैसे सामंजस्य लायें? इतनी चीजे हैं कि किसको लें, किसको छोड़ें? किससे कितना लें? किससे कितना छोड़ें? सब जगह ये गड़बड़ी है, यह द्वन्द्व मचा हुआ है। हमको समन्वय करने की शक्ति की आवश्यकता है। इस समन्वय के ही अधिष्ठाता श्रीरामकृष्ण देव हैं, इसलिये उनके समन्वय के बारे में कुछ बताऊँगा। समन्वय अर्थात् 'oppropriateness' अर्थात् 'प्रासंगिकता'। वर्तमान में जो अत्यन्त उपयुक्त है, उसी को हम ग्रहण करते हैं। उदाहरण के लिये, एक जमाना था, जब कहते थे – ये ऐलोपैथी ओषधी ही ओषधी है। ऐलोपैथी के डाक्टर के पास जाकर लोग कहते थे - डॉक्टर साहब, हमने होमियोपैथी की उपयुक्त ओषधी ली है। वे उसको ओषधी ही नहीं मानते थे। इसी तरह कोई आयुर्वेद ओषधी लिया, तो ऐलोपैथी वाला बोलता था, ऐलोपैथी ओषधी ही ओषधी है, दूसरा कुछ ओषधी नहीं है। ये थी सामान्य वृत्ति। अभी पाश्चात्य देशों में बड़े-बड़े अस्पतालों में ऐलोपैथी, आयुर्वेद और होमियोपैथी तीनों चलती है, यूनानी भी चलती है। इसको कहते हैं - 'other medicines'। तो सब जगह, सब ओषधियों को स्थान मिल गया है। यह समन्वय, सामंजस्य आ गया है, कट्टरता की बीज चली गई है।

इसी प्रकार एक जमाने में लोग बोलते थे – मेरे धर्म में सबसे अधिक शक्ति है। मेरे धर्म का जो पालन नहीं करेगा, वह स्वर्ग में प्रवेश नहीं पायेगा। आज ऐसा कोई नहीं कहता। सब कहते हैं – आप ऐसा कैसे बोल सकते हैं? आपके धर्म से ही सब मिलेगा क्या? क्या दूसरे धर्मवाले नरक में चले जायेंगे? वे एक सरल प्रश्न यह करते हैं – अगर तुम्हारे धर्म के बिना कोई स्वर्ग में नहीं जा सकता, तो हमारे धर्म में इतने मुनि-ऋषिवर और कितने संत हुए हैं। उन्हें तो स्वर्ग प्राप्त हुआ, मुक्ति प्राप्ति हुई। वह कट्टरता का एक समय था। आजकल धर्म के बारे में कट्टरता जाती रही। अब कहते हैं, आपका धर्म मुझे अच्छा लगे, तो लूँगा। हिन्दू धर्म अच्छा लगे, तो उसको लूँगा, नहीं तो क्रिश्चन धर्म अच्छा लगे, तो उसको लूँगा। जो धर्म अच्छा लगता है, उसके साथ जाऊँगा। पहले की कट्टरता अब नहीं रही। आज धर्म के बारे में भी विशालता आ रही है। यह भगवान श्रीरामकृष्ण की देन है। उन्होंने सभी धर्मों में समन्वय का प्रचार किया। धर्म को एक विज्ञान की दृष्टि से प्रचार किया। इसीलिए उनको कहते हैं कि ये 'विज्ञान और धर्म' को समझने वाले महापुरुष हैं।

पाश्चात्य देशों के इतिहास को यदि हम पढ़ें, तो देखेंगे कि करीब-करीब सोलहवीं सदी से लेकर बीसवीं या इक्कीसवीं सदी तक धर्म और विज्ञान के बीच में लड़ाई चल रही है। विज्ञान वाले बोलते हैं कि वे धर्म को नहीं मानते। धार्मिक लोग बोलते है कि वे विज्ञान को नहीं मानेंगे। क्योंकि वैज्ञानिक लोग हर बात का कारण चाहते हैं। अब भगवान हैं। इसका क्या कारण देगें? भगवान हैं, यह तो बाइबिल, कुरान, और हमारे वेद में लिखा है। वैज्ञानिक बोलते हैं, हम बाइबिल, कुरान, वेद को नहीं मानते। हमें भगवान को प्रत्यक्ष दिखाओ, तभी हम मानेंगे। अब कितने लोग हैं, जो भगवान को साक्षात् दिखा सकें? दिखा नहीं सकता। इसलिए वैज्ञानिकों ने धर्म को तिलांजली दे दी। वे कहते थे, आपलोग कहते हैं कि धर्म विश्वास है, केवल विश्वास करो, विश्वास करो, विश्वास करो। हम छोटे बच्चे हैं क्या? ऐसा विश्वास करने से विज्ञान और धर्म एक साथ नहीं चल सकता। इस प्रकार वैज्ञानिक लोग आगे बढ़ते गये। धर्म के लोग उनसे डरते थे। सोचते थे, अरे उनको कुछ बोलने से, वह कारण चाहेगा, तर्क करेगा, विवाद करेगा। विवाद के द्वारा क्या भगवान को दिखाया जा सकता है? वह तो विश्वास और श्रद्धा की बात है। वे श्रद्धा को मानने वाले ही नहीं हैं। दोनों के बीच में प्रचंड झगड़ा चलता रहा। पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिकों को धार्मिक नहीं मानते और धार्मिकों को वैज्ञानिक नहीं मानते थे। ऐसे समय में, भगवान श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द जी आए।

स्वामी विवेकानन्द विज्ञान के विद्यार्थी थे। वे तत्कालीन भारत के कोलकाता विश्वविद्यालय के छात्र थे। वे विज्ञान, मनोविज्ञान जानते थे और साथ-ही-साथ हमारे भारत के इतिहास और पाश्चात्य इतिहास को जानते थे। ऐसा विश्वविद्यालय का छात्र आकर श्रीरामकृष्ण से यह प्रश्न पूछता है – आप भगवान-भगवान कहते हैं। क्या आपने भगवान् को देखा है? इस प्रश्न को उन्होंने बहुत-से दूसरे संत-महात्माओं से भी पूछा था। किसी ने भी उत्तर नहीं दिया कि मैंने भगवान को देखा है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४८७ का शेष भाग

इतनी निर्भरता थी कि "बच्चों और स्त्री की रक्षा, उन्हें और हमें पैदा करनेवाला ईश्वर करेगा।" इस अचल विश्वास पर उन्होंने कभी भी अपने परिवार के लिए संग्रह नहीं किया, सदा अपरिग्रही रहे। **(क्रमशः)**

सन्दर्भ सूत्र – १. आत्मकथा -२७६, **२.** वही ३१९-२०, **३.** वही ३२०, **४.** वही, २४८

बहन ने भाई को ऋणमुक्त किया

स्वामी पद्माक्षानन्द

पद्मा नाम की एक बालिका थी। उसका जन्म भोपाल-राज्य के एक गरीब क्षत्रिय किसान के घर में हुआ था। जब पद्मा ढ़ाई वर्ष की थी, तभी उसके माता-पिता की मृत्यु हो गयी थी। उसका एक बड़ा भाई था, जिसका नाम जोरावर सिंह था। उसकी उम्र १६ वर्ष की थी। किशोर अवस्था के होने के बावजूद वह वीर पुरुष था। उसने अपनी बहन पद्मा का पालन-पोषण किया। जोरावर सिंह पद्मा को बचपन से ही अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देने लगा। पद्मा ने मन लगाकर युद्ध-विद्या सीख ली। वह धनुष-बाण, भाला-तलवार, घुड़सवारी इत्यादि में निपुण हो गयी। वह एक कुशल योद्धा बन गयी। इसके साथ ही पद्मा घर के कार्य करने में भी खूब दक्ष थी।

जोरावर सिंह अपने पिता के धन से ही अपना तथा अपनी बहन का खर्चा चलाता था। समय के साथ पिता का धन समाप्त हो गया। उसके ऊपर बहुत-सा कर्ज हो गया। महाजन ने अनेकों बार जोरावर को खरी-खोटी सुनाई। अन्त में महाजन ने भोपाल-दरबार में नालिश कर दी। जोरावर सिंह को कर्ज न देने के कारण जेल में बन्द कर दिया गया।

भाई के जेल जाने के बाद बेचारी पद्मा बिल्कुल अकेली हो गयी। इस बिपत्ति में उसने हार मानकर आँसू बहाना स्वीकार नहीं किया। पद्मा ने अपने भाई को जेल से छुड़ाने का निश्चय किया। पद्मा ने स्त्री-वेश को त्याग दिया और एक वीर राजपूत सैनिक का वेश धारण कर लिया। अपना नाम-रूप त्यागकर पद्मा अब एक क्षत्रिय योद्धा 'पद्म सिंह' बन गयी। वह नौकरी की खोज में भोपाल से ग्वालियर चली आयी। उस समय ग्वालियर के राजा दौलतरावजी सेंधिया थे। पद्म सिंह बनी पद्मा ने राजा के पास सेना में नौकरी के लिए प्रार्थना की। निशाना लगाना, घुड़सवारी, तलवार चलाना इत्यादि में उसकी परीक्षा ली गयी। वह सभी परीक्षा में सफल हो गयी। उसे सेना में नौकरी मिल गयी।

उन दिनों सेंधिया और अँग्रेज सरकार के बीच में युद्ध चल रहा था। यह युद्ध तीन वर्ष तक चलता रहा। इस युद्ध में पद्मा ने बहुत वीरता दिखलायी। उसे साधारण सैनिक से हवलदार बना दिया गया। वह बहुत बार घायल हुई। और उसकी भुजाओं तथा जाँघों में कई बार गोलियाँ लगीं। लेकिन वह सदा वीर योद्धा के समान सभी जख्मों को झेल लेती थी। उसकी वीरता के सामने शत्रुओं को भाग जाना पड़ता था।

अपने भाई को जेल से कैसे छुड़ाया जाये, पद्मा इसी चिन्ता में सदा खोयी रहती थी। वेतन का बहुत कम भाग अपने लिए खर्च करती तथा शेष बचाकर रख दिया करती थी। पद्मा स्वयं को सभी से सदा छिपा कर रखती थी। उसे कोई पहचान न ले, इसलिए वह स्नान-शौच इत्यादि के लिए अलग चली जाती थी।

सैनिकों में से कुछ लोगों को सन्देह हुआ कि बिना मूछोंवाला हवलदार उनके साथ स्नान इत्यादि क्यों नहीं करता? क्यों वह सदा कपड़े पहने रहता है? एक सैनिक ने एक दिन पद्मा का पीछा किया। उसे यह आश्चर्य हुआ कि हवलदार तो एक स्त्री है। उसने सभी को यह बात बतला दी। यह समाचार सेंधिया-दरबार में भी पहुँच गया। राजा ने पद्मा को बुलाया और पुरुष-वेश धारण करने का कारण पूछा।

पद्मा अपने आप को सम्भाल न सकीं और फूट-फूटकर रोने लगी। उसने राजा को सारी बातें बतला दी। महाराज सेंधिया उसकी भ्रातृभक्ति से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सरकारी खजाने से कर्ज का धन भोपाल-दरबार में भेजवा दिया और उन्होंने पत्र लिखा कि जोरावर सिंह को कैद से मुक्त करके तुरन्त ग्वालियर भेज दिया जाये।

जोरावर सिंह छोड़ दिया गया। ग्वालियर आकर कई दिनों के बाद अपने बहन से मिलकर वह बहुत आनन्दित हुआ। महाराज सेंधिया ने जोरावर सिंह को अपनी सेना में एक अच्छा पद दे दिया। और पद्मा का विवाह एक सेनापति के साथ कर दिया। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (८४)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२०-११-१९६१

प्रश्न – संन्यासी और अभ्युदय-आकांक्षी को कैसे पहचानेंगे?

महाराज – व्यक्ति की परीक्षा सत्यवादी, जितेन्द्रिय और परोपकारी होने में होती है। सत्यवादी नहीं होने से समाज में रह पाना असम्भव है, कोई भी विश्वास नहीं करेगा। परोपकार के द्वारा पूर्वकृत पापों को क्षय किया जाता है। किन्तु मुमुक्षु होने के लिये जितेन्द्रियता अवश्यमेव चाहिए। संन्यासी बाहरी कार्यों में उदासीन रहेगा, सहनशक्ति असीम होगी, सब कुछ सहन करेगा। किन्तु उसके भीतर पृथ्वी की समस्त माया-ममता से ऊपर उठने का अपार संघर्ष होता रहेगा। अभ्युदय-आकांक्षी बाहरी प्रतिकूलताओं से संघर्ष करते हुए समाज के सामने खड़ा होगा। उसका संघर्ष बाहर है, भीतर विशेष कुछ संघर्ष नहीं है। जिनमें सूक्ष्म चिन्तन का अभाव होता है, वे अड्डेबाजी करते हैं। दिमाग काम करता नहीं, इसलिये गप-शप 'अड्डेबाजी' करते हैं।

स्वामी प्रेमेशानन्द

संस्कार से सुयोग-सुविधा, शुभेच्छा सब कुछ होती है। किसका कर्म कैसा है, कुछ भी समझ में नहीं आता – 'गहना कर्मणो गति:'। अच्छा खराब हो जाता है, खराब अच्छा हो जाता है। तुम लोगों को तो विश्वविद्यालय शिक्षा मिली है। मैट्रिक पास करके आओगे और तब तक का सारा कुसंस्कार लेकर आओगे। नियम है – बाल्यकाल में गुरु-गृह में गुरु के साथ रहकर कठोर ब्रह्मचर्य और गायत्री ध्यान का अभ्यास करके कोई धार्मिक होगा और कोई मोक्ष-पथगामी होगा।

एक साधु एक युवती की बहुत प्रशंसा कर रहा था – यह बिलकुल ठीक नहीं है। श्रवण, गायन मैथुन के आठ प्रकारों में आता है। इस युवा काल में यौन-सम्बन्धी विचारों-कार्यों से सैकड़ों हाथ दूर नहीं रहने से प्राण नहीं बचाया जा सकता। पता नहीं, कब कौन सामयिक दुर्बलता आ जाएगी कि उसके लिए सारा जीवन व्यर्थ प्रतीत होगा, जीवन भर पश्चाताप होता रहेगा।

२३-११-१९६१

महाराज – निन्दा दो प्रकार के लोग करते हैं। एक निम्न श्रेणी के लोग हैं, वे हताश होते हैं, दूसरों को छोटा बनाना चाहते हैं। एक उच्च श्रेणी के लोग हैं, वे अपनी वीरता दिखाना चाहते हैं।

प्रश्न – इस समय मन को किसी उच्च चिन्तन में उठाकर रख पाने में सुरक्षा है।

महाराज – ये सब बातें आत्मचिन्तनपरक, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, पहले इसे कहना ही निषिद्ध था। मैंने कहकर देखा है, बहुत कम लोग ही सुनना चाहते हैं। एक अन्य प्रकार के लोग पुस्तकीय ज्ञान को सुन लेते हैं, जीवन में उसकी आवश्यकता का अनुभव नहीं करते। पंचकोशों का विचार सर्वश्रेष्ठ आत्म-विकास कर सकता है। इसके अतिरिक्त, स्वरूप-विकास और सृष्टितत्त्व को खूब अच्छी तरह जानना चाहिए।

प्रश्न – इच्छा क्या है?

महाराज – इच्छा तो एक प्रकार की प्रतिक्रिया है। संसार से कुछ नहीं चाहिए, इसका अनुभव होते ही उच्चतर वस्तु को पाने की इच्छा होगी। संन्यासी होने के लिये, विशेषकर वर्तमान समय में, तीक्ष्ण विचारसम्पन्न होना चाहिए। वर्तमान

समय में भोग करने के बाद कितने लोग साधु होते हैं? स्वाद लेना नहीं चलेगा, स्वाद लेने जाने पर पूर्व संस्कारवश भोग आ जाता है। इसीलिए तीक्ष्ण विचार द्वारा भोग का दमन करना होगा। फिर भी देखता हूँ कि घर में भोजन-वस्त्र या सम्मान न पाने पर संन्यासी नहीं होते। विचार के आवेग में बह जाते हैं।

२६-११-१९६१

एक संन्यासी आए हैं। उन्होंने बात-बात में ही कहा, ''मैं इस समय सेवानिवृत्त हो गया हूँ। सोचा हूँ कि किसी निर्जन स्थान में जाकर जप-ध्यान करके समय बिताऊँगा।

महाराज – यह देखो! कहता है – ''मैं सेवानिवृत्त हो गया हूँ', अब जप-ध्यान करके समय बिताऊँगा। कैसा मूर्ख है! श्रीरामकृष्ण का भक्त होकर कहता है कि सेवानिवृत्त हो गया हूँ। फिर कार्य छोड़कर ही वे जप-ध्यान में बैठेंगे! ठाकुर की सेवा और ठाकुर का चिन्तन क्या अलग-अलग हैं? फिर तैयारी न होने से अचानक क्या जप-ध्यान होता है?

दिनांक २६-११-१९६१ को प्रेमेश महाराज एक ब्रह्मचारी को एक भावपूर्ण विस्तृत पत्र लिखते हैं। इस पत्र की मुख्य बातें यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ –

''कई दिनों से मेरे मन में एक विचार उदित होकर प्राय: मुझे कष्ट दे रहा है। स्वामीजी की राजयोग पुस्तक संन्यासियों के लिए गीता के समान अवश्य पठनीय है। इस पुस्तक के सूत्रों का भाव समझने में थोड़ा कष्ट होता है। इस सम्बन्ध में किसी-किसी के साथ कुछ बातें मैंने कही थीं। किन्तु इस मृत्यु शय्या पर सोकर अब कोई उपाय कर पाना बिलकुल असम्भव देखता हूँ। राजयोग के सूत्रों का भाव ठीक से समझने में थोड़ी असुविधा होती है। मैं भी सहायता करने में असमर्थ हूँ। इसीलिए बार-बार मन में आता है कि उन सूत्रों का शब्दार्थ, व्याकरणगत अर्थ और थोड़ी दार्शनिक, तकनीकी व्याख्यायुक्त एक संक्षिप्त पुस्तिका प्रकाशित कर पाने से बहुत लोगों को लाभ हो सकता है।''

२७-११-१९६१

प्रश्न – मन में काम आ रहा है, लोभ आ रहा है, किन्तु बाहर प्रकट नहीं होने दिया, तो क्या यह मिथ्याचार है?

महाराज – नहीं, यदि तुम अन्दर-अन्दर छिपकर भोग करो और फिर लोगों के सामने वीरता दिखाते हुए ऐसा प्रकट करो कि भोग नहीं करते हो, तो वह मिथ्याचार है। यह तो तुम काम-क्रोध को संयत करने का अभ्यास कर रहो। असली बात है काम-क्रोध के विरुद्ध जो भी उपाय किया जाय, वह अच्छा है।

साधारण लोग उद्देश्य को नहीं पकड़ पाते, किसी उपाय को ही बड़ा समझते हैं। आसन लगाकर बैठना ही प्रमुख उद्देश्य बन जाता है, आसन लगाने के उद्देश्य में भगवान को भूल जाते हैं। रजोगुणी व्यक्ति बहादुरी दिखाने के लिए ही तो आसन लगाकर बैठता है। उपवास करता है, भूख लगने पर केवल खाद्य पदार्थ का चिन्तन करता है, किन्तु बहादुरी दिखाने के लिए खायेगा नहीं। मास्टर महाशय (श्रीम) इसीलिए कहते हैं कि उत्सव के समय मठ में जाने पर साथ में कुछ खाद्य वस्तु ले लेना। उपवास उद्देश्य नहीं है, ईश्वर की दिशा में चलना ही उद्देश्य है।

हमारे एक व्यक्ति ध्यान करते-करते लुढ़क जाते हैं, किन्तु वे प्रयत्न करना नहीं छोड़ते। लोग बाहर का देखते हैं, उसके भीतर क्या हो रहा है, कौन देखता है? उद्देश्य और उपाय परिकल्पना और वास्तविक मूल्यांकन प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में ही करना अपेक्षित है।

नित्य प्रार्थना करो, बुद्धि को शुद्ध करो, ऐसा न होने से केवल नाम-जप से कुछ नहीं होगा। छिद्रों से सब निकल जाएगा। गीता में 'ददामि बुद्धियोगं' का उल्लेख है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ४९३ का शेष भाग

को तुमसे किसने कहा? फिर विसर्जन करने से ही वे कहाँ जाएँगी? पुत्र को छोड़कर क्या माँ कभी रह सकती है? माँ ने इन तीन दिनों तक बाहर दालान में बैठकर तुम्हारी पूजा ग्रहण की है, आज से वे तुम्हारे और भी पास में रहकर सर्वदा तुम्हारे हृदय में बैठकर तुम्हारी पूजा ग्रहण करेंगी।'' (श्रीरामकृष्ण भक्त-मालिका – स्वामी गम्भीरानन्द, द्वितीय भाग, उद्बोधन कार्यालय, पृ.१४७) मथुर बाबू भी शान्त हो गए। केवल इतना ही नहीं हम लोग भी श्रीभगवान के मुख से इस शारदीया महापूजा का तात्पर्य सहज भाषा में समझ सके। ○○○

दृग्-दृश्य-विवेकः (५)

(यह ४६ श्लोकों का 'दृग्-दृश्य-विवेक' नामक प्रकरण ग्रन्थ 'वाक्य-सुधा' नाम से भी परिचित है। इसमें मुख्यत: 'दृश्य' के रूप में जीव-जगत् की और 'द्रष्टा' के रूप में 'आत्मा' या 'ब्रह्म' पर; और साथ ही 'सविकल्प' तथा 'निर्विकल्प' समाधियों पर भी चर्चा की गयी है। ग्रन्थ छोटा, परन्तु तत्त्वबोध की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। ज्ञातव्य है कि इसके १३वें से ३१वें श्लोकों के बीच के आनेवाले १६ श्लोक 'सरस्वती-रहस्य-उपनिषद्' में भी प्राप्त होते हैं। मूल संस्कृत से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.।)

व्यावहारिक जीव

साक्षिणः पुरतो भाति लिङ्गं देहेन संयुतम् ।
चितिच्छाया-समावेशाज्जीवः स्याद्व्यावहारिकः ॥१६॥

अन्वयार्थ – (जो तत्त्व) **साक्षिणः** साक्षी के **पुरतः** समक्ष **लिङ्गं** सूक्ष्म शरीर – **देहेन** स्थूल देह के साथ **संयुतं** जुड़ा हुआ **भाति** भासित होता है; (वही) **चितिच्छाया** चैतन्य की छाया के **समावेशात्** समाविष्ट हो जाने से **व्यावहारिकः** व्यावहारिक **जीवः** जीव **स्यात्** कहलाता है।

भावार्थ – साक्षी के समक्ष जो सूक्ष्म शरीर – स्थूल देह के साथ जुड़ा हुआ प्रतिभात होता है। चैतन्य की छाया के समाविष्ट हो जाने से वह (सूक्ष्म शरीर ही) व्यावहारिक जीव कहलाता है।

जीवत्व का नाश

अस्य जीवत्वमारोपात् साक्षिण्यप्यवभासते ।
आवृतौ तु विनष्टायां भेदे भातेऽपयाति तत् ॥१७॥

अन्वयार्थ – **अस्य** इस (आत्मा) का **जीवत्वं** जीवत्व – **आरोपात्** अध्यास के फलस्वरूप **साक्षिणि** साक्षी (आत्मा) में **अपि** भी **अवभासते** प्रतिभात होता है; **तु** परन्तु **आवृतौ** आवरण-शक्ति का **विनष्टायां** नाश होते ही, **भेदे** भेद **भाते** स्पष्ट हो जाने पर, **तत्** वह (जीवत्व) **अपयाति** चला जाता है।

भावार्थ – इस 'जीवत्व' अध्यास के फलस्वरूप वह साक्षी (अन्तरात्मा) में भी प्रतिभात होता है, परन्तु आवरण-शक्ति का नाश होते ही, भेद स्पष्ट हो जाने से, वह (जीवत्व) दूर हो जाता है।

आवरण से विकृति

तथा सर्ग-ब्रह्मणोश्च भेदमावृत्य तिष्ठति ।
या शक्तिस्तद्वशाद्-ब्रह्म विकृतत्वेन भासते ॥१८॥

अन्वयार्थ – **तथा** इसी प्रकार **या** जो **शक्तिः** शक्ति **सर्ग-ब्रह्मणोः** सृष्टि तथा ब्रह्म के **भेदं** भेद को **आवृत्य** आवृत्त करके **तिष्ठति** स्थित रहती है, **तद्वशात्** उसके प्रभाव से **ब्रह्म** ब्रह्म **विकृतत्वेन** विकृत **भासते** प्रतीत होता है।

भावार्थ – इस प्रकार जो शक्ति – सृष्टि तथा ब्रह्म के भेद को आवृत्त करके स्थित रहती है, उसी के प्रभाव से ब्रह्म विकृत प्रतीत होता है।

ब्रह्म की निर्विकारता

अत्राप्यावृति-नाशेन विभाति ब्रह्म-सर्गयोः ।
भेदस्तयोर्विकारः स्यात् सर्गे न ब्रह्मणि क्वचित् ॥१९॥

अन्वयार्थ – **अत्र अपि** इसमें भी **आवृति-नाशेन** आवरण का विनाश हो जाने से **तयोः ब्रह्म-सर्गयोः** ब्रह्म तथा सृष्टि – दोनों का **भेदः** भेद **विभाति** प्रकट हो जाता है। **(ततः** इसके बाद) **सर्गे** सृष्टि में **विकारः** विकार **स्यात्** रहता है, (परन्तु) **ब्रह्मणि** ब्रह्म में **क्वचित्** कभी **न (विकारः स्यात्** विकार) नहीं रहता।

भावार्थ – इसमें भी आवरण का नाश हो जाने से ब्रह्म तथा सृष्टि – दोनों का भेद प्रकट हो जाता है। (इसके बाद) सृष्टि में विकार रहता है, परन्तु ब्रह्म में विकार कभी नहीं रहता।

ब्रह्म और जगत् के मूलतत्त्व

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् ।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ।।२०।।

अन्वयार्थ – (प्रत्येक वस्तु) **अस्ति** विद्यमानता, **भाति** प्रकाशमानता, **प्रियं** प्रियता, **रूपं** रूप **च** और **नाम** नाम – **इति अंशपञ्चकं** इन पाँच अंशों वाली है। (इनमें से) **आद्य-त्रयं** प्रथम तीन अंश **ब्रह्मरूपं** ब्रह्मरूप हैं (और) **ततः** परवर्ती **द्वयं** दो अंश **जगद्-रूपं** जगत् के रूप हैं।

भावार्थ – (प्रत्येक वस्तु) विद्यमानता, प्रकाशमानता, प्रियता, रूप और नाम – इन पाँच अंशों वाली है। (इनमें से) प्रथम तीन अंश ब्रह्मरूप हैं (और) परवर्ती दो अंश जगत् के रूप हैं। **(क्रमशः)**

निराली है राजस्थान की संस्कृति

कृष्णचन्द्र टवाणी

प्रधान सम्पादक, 'अध्यात्म अमृत' राजस्थान

'म्हार रंग-रंगीलो राजस्थान' ..., इन पंक्तियों को सुनते ही राजस्थान की सतरंगी संस्कृति की तस्वीर हमारे मस्तिष्क में उभर आती है। हर संस्कृति की अपनी पहचान होती है, जिसमें समाहित होता है – पूरा परिवेश, आदर्श परम्परा एवं लोकभाव। राजस्थान की संस्कृति अपने आप में अनोखी है, जो सम्पूर्ण विश्व में अपनी विशेषताओं के लिये पहचानी जाती है। यहाँ के रहन-सहन, वेश-भूषा, स्वादिष्ट भोजन, अतिथि-सत्कार, मेले, नृत्य-संगीत आदि सभी अपने आप में बेमिशाल हैं। राजस्थान का व्यक्ति स्वदेश में रहे, चाहे विदेश में, वह अपनी राजस्थानी संस्कृति को कभी नहीं भूलता है। खान-पान, शादी-विवाह में राजस्थानी वेश-भूषा व रीति-रिवाजों को ही अपनाता है।

शक्ति और भक्ति की महान संस्कृति

शौर्य और बलिदान की भूमि भक्तों और संतों का प्रदेश है राजस्थान। यहाँ महाराणा प्रताप, पृथ्वीराज चौहान, अमर सिंह राठौड़ और राणा सांगा, जैसे शूरवीर उत्पन्न हुए हैं, यहीं अनेक सूफी संत, दादू, पीपा, चरणदास और भक्तिमति मीरा भी अवतरित हुई हैं। राजस्थान की रत्नगर्भा भूमि ने जिन वीरों को पैदा किया है, यदि उनके नामों की माला पिरोकर भारत माँ के गले में पहना दी जाए, तो माँ का सिर गर्व से ऊँचा हो जाए। यहाँ के वीरों ने चीन और पाकिस्तान के सैनिकों को नाकों चने चबवा दिए थे। यहाँ की वीरांगनाओं का जौहर की ज्वाला में अपने आप को समर्पित करना इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

अतिथि सत्कार की अद्वितीय परम्परा

भारतीय संस्कृति में 'अतिथि देवो भव' माना गया है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण राजस्थान के प्रत्येक परिवार में देखने को मिलता है। जब यहाँ के ढाणी, गाँव या नगर में बस रहे लोगों के यहाँ जाने का अवसर मिलता है, तो राजस्थानी परम्परा के अनुसार अतिथि को आदर सहित बैठक में बिठाया जाता है तथा पीने के लिये तत्काल शुद्ध पानी या छाछ का गिलास दिया जाता है। यह है यहाँ के स्वागत की परम्परा। फिर आने का कारण पूछा जाता है तथा घर आए अतिथि का पूर्ण रूप से स्वागत किया जाता है। भोजन के समय भोजन

और नाश्ते के समय नाश्ते के लिए आग्रह किया जाता है, जो राजस्थानी संस्कृति का परिचायक है। यहाँ का भोजन भी अपने ढंग का निराला ही होता है। यहाँ के मुख्य भोजन में बाजरे की रोटी, मक्खन, दही, छाछ-रबड़ी, दाल-बाटी, चूरमा एवं बाजरे का खिचड़ा आदि रहता है। राजस्थान की मिठाइयाँ और नमकीन न केवल देश में, अपितु पूरे विश्व में विख्यात हैं। जैसे बीकानेर के रसगुल्ले और नमकीन (भुजिया), जयपुर का घेवर, सांभर की फीणी, बयावर की तिल पपड़ी, अजमेर का सोहन हलवा, किशनगढ़ की बालूशाही, अलवर का मावा (मिल्क केक), जोधपुर की मावे की कचौड़ी तथा मिर्ची बड़ा, इतने स्वादिष्ट होते हैं कि इन्हें बार-बार खाने की अभिलाषा मन में बनी रहती है।

धन कुबेरों की जन्मस्थली

यहाँ के पुरुषार्थी लोगों ने विदेश एवं देश के विभिन्न भागों में जाकर अपने तन-मन-धन से योगदान देकर उसे समृद्ध कर यहाँ का विकास किया है। निजी क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित करने वाले बिड़ला, बजाज, पोद्दार, धूत, बांगड़, खेतान, डालमिया आदि राजस्थान के ही हैं। चूरू के श्री लक्ष्मी निवास मित्तल ने तो विश्व के उद्योगपतियों में अपना प्रथम स्थान बना लिया है। देश के विभिन्न भागों में उद्योगों का महाजाल फैलानेवाले एवं राष्ट्र के विकास में अहम् भूमिका निभाने वाले ९० प्रतिशत उद्योगपतियों की जन्मस्थली राजस्थान ही है। न केवल देश के प्रत्येक बड़े नगर में, अपितु विश्व के प्रमुख राष्ट्रों, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, केन्या, दक्षिण-अफ्रीका, यूरोप, सिंगापुर, दुबई, इत्यादि सभी

स्थानों पर राजस्थानियों ने अपनी श्रेष्ठता के झंडे गाड़े हैं।

खनिज सम्पदा में अग्रणी

राजस्थान की विस्तृत मरुभूमि बंजर होते हुए भी रत्नों से भरी पड़ी है। प्रदेश के आँचल में विपुल खनिज सम्पदा का भंडार समाहित है। राजस्थान का संगमरमर देश-विदेश में अपनी धाक जमाए हुए है। विश्वप्रसिद्ध ताजमहल राजस्थान के संगमरमर पत्थर से ही बना है। लाईम स्टोन, ताँबा, जस्ता, जिप्सम, फास्फेट, चाँदी, सीसा आदि खनिजों का भंडार है राजस्थान।

राजस्थान के कण-कण में बसी है कला और संस्कृति

जब कला और संस्कृति की बात हो, तो रंग-रंगीले राजस्थान की पगड़ी, साफा, चूड़ियाँ, कसीदे व जरी की जूतियाँ, बंधेज की चुनरी, जेवेलरी, मीनाकारी आदि को सर्वप्रथम याद किया जाता है। जोधपुरी बंधेज के साफे, चुनरी की साड़ी, जूतियाँ, उदयपुर के खिलौने, जयपुर की रजाइयाँ, नाथद्वारा की चाँदी एवं मीनाकारी की वस्तुएँ आदि का पूरे विश्व में निर्यात होता है।

पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र

विदेशी सैलानियों के लिए राजस्थान आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ के किलों, महलों, झीलों, अभयारण्य, दुर्ग, हवेलियाँ, लोककला, चित्रकला को देखने विश्व के ७० देशों के पर्यटक यहाँ आते रहते हैं। राजस्थान में पुष्कर समारोह, जैसलमेर में मरु महोत्सव, आमेर में हाथी समारोह, मारवाड़ा समारोह को देखने प्रतिवर्ष लाखों पर्यटकों का यहाँ आगमन होता है। अजमेर में ख्वाजा का उर्स, जयपुर में गणगौर व तीज के मेले, पुष्कर के पशु मेले में विधि मनोरंजक कार्यक्रमों को देखकर विदेशी पर्यटक अपने आपको धन्य समझते हैं। हाथी और ऊँट की सवारी का आकर्षण व आनन्द विदेशियों को राजस्थान की ओर बरबस खींच लाता है।

सदाबहार लोकगीत एवं लोकनृत्य

लोकनृत्य संगीत के क्षेत्र में यहाँ के कलाकारों ने विदेशों में भी अपनी कला का प्रदर्शन कर खूब ख्याति अर्जित की है। यहाँ के लोकगीतों में काग, सूबिटया, घुड़ला, मेहँदी, विनायकजी आदि का मार्मिक वर्णन मिलता है। यहाँ के लोकगीतों में यह विशेषता होती है कि ये कभी पुराने अथवा मन को उबा देने वाले नहीं होते हैं। यहाँ के लोकनृत्यों को देखकर तथा राजस्थानी मधुर गीतों को सुनकर विदेशी सैलानी स्वयं भी नर्तकों के साथ-साथ झूमने लगते हैं। युवतियाँ तीज व गणगौर त्यौहार पर भाव-विभोर होकर नृत्य करती हैं। यहाँ के घूमर, भवाई, डांडियाँ, कालबेलियाँ, तेराताली, कच्छी घोड़ी, चरी व दीपक आदि नृत्य दर्शनीय हैं। होली के दिनों में डफ, नगारे की ध्वनि के साथ-साथ घेरा बनाकर नाचना तथा छारंडी के दिन बादशाह का मेला राजस्थान के अलावा कहीं नहीं होता है। नृत्य संगीत के ही नहीं, चित्रकला एवं मूर्तिकला के क्षेत्र में भी यहाँ के कलाकारों ने अपनी गौरव-पताका पूरे विश्व में फहराई है।

अनोखे राजस्थानी आभूषण

राजस्थानी संस्कृति की पहचान है यहाँ के विविध आभूषण, जितने प्रकार के आभूषण पहनने की परम्परा राजस्थान में है, उतने अन्य प्रान्तों में नहीं है। यहाँ तक कि पुरुष भी आभूषण पहनते हैं। पुरुषों के आभूषणों में गले की कंठी, अँगूठी आदि प्रमुख हैं। राजस्थान की स्त्रियों को सुन्दर-सुन्दर आभूषणों का अजायबघर कहें, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। सिर से लेकर पाँव तक स्त्रियाँ आभूषणों से अलंकृत रहना पसन्द करती हैं। वैसे तो स्त्रियों के लिये सैकड़ों आभूषणों का प्रचलन यहाँ है, किन्तु अँगूठी, बिछिया, बोरला, मांग-टीके, कड़ी-कांबा, कांकण, कटिमेखला, बाजूबंद, पूँची हार, पायल, पाजेब, बंगफूल, हथफूल, गोखरू, नाक की बाली, झुमका, हार, कंठी चूड़ा, कड़ी, तगड़ी आदि प्रमुख हैं। किन्तु पिछले एक दशक में राजस्थानी संस्कृति में भी समय के बदलाव दृष्टिगोचर हो रहे हैं। राजस्थान की सांस्कृतिक निधियाँ लुप्त न हों तथा उनका पुरुद्धार हो यह अत्यन्त आवश्यक है। राजस्थान लोक साहित्य संस्कृति अकादमी, बीकानेर आदि कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं, जो इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। आइए हम भी संकल्प करें कि हम राजस्थानी संस्कृति, सभ्यता एवं भाषा को जीवित रखने हेतु यथासम्भव प्रयत्न करेंगे। ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३४)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

२४ जून, १९०० : न्यूयार्क (मिस मैक्लाउड को)

अभी-अभी पूजनीय माँ (श्रीमती ओल बुल) को एक सांत्वनादायी पत्र लिखते हुए मैंने अपनी अमेरिकी-यात्रा को समेट लिया है। पत्र में मैंने स्नेहमयी माँ को बताया है कि किस प्रकार अब उनका (स्वामीजी का) भाग्य पलट गया है और वे एक देवता के समान पूजित हो रहे हैं। यह अनुमान लगाने का कार्य मैंने उन्हीं पर छोड़ दिया है कि पृथ्वी के सारे राजमुकुट उनके चरणों में लोट रहे हैं।...

परन्तु युम, सचमुच यह सब सत्य है! इस समय वे जिस स्थिति में हैं, कुछ भी उन्हें रोक नहीं सकता। वे दिव्य हैं। आज पूर्वाह्न में ११ बजे – 'मातृ-उपासना' पर उनका व्याख्यान होगा और उसका प्रत्येक शब्द तुम्हें प्राप्त होगा, भले ही मुझे उसे लिपिबद्ध कराने के लिए १० डालर भी खर्च करने पड़ जाएँ। कल उनके सामने ही किसी ने मुझसे यह बात कही और इस पर वे मेरी ओर मुड़े तथा मुस्कुराते हुए बोले, "हाँ, 'मातृ-उपासना' – इसी विषय पर मैं बोलने जा रहा हूँ और यही मुझे प्रिय भी है" – वही पुराना ज्योतिर्मय, स्वत:स्फूर्त, मुक्त-स्वरूप!

एक दिन सुबह, ३४वें मार्ग के भवन में, वे कोई समाचार लेकर मुझसे मिलने आये थे। मैंने उन्हें कुछ सलाह दी, जो उन्हें भूल प्रतीत हुई। अहा, उस समय यदि तुमने उन्हें देखा होता! ऐसी एक झलक पाने को वह नाराज़गी भी स्वीकार्य है। उन्होंने कहा, "याद रखो कि मैं मुक्त हूँ, मुक्त हूँ – जन्म से ही मुक्त हूँ!" इसके बाद वे जगदम्बा के बारे में बोलने लगे और यह भी कहा कि अच्छा हो यदि यह संसार और सब कार्य – छिन्न-भिन्न हो जाए, ताकि वे हिमालय में जाकर ध्यान में बैठ सकें। यूरोपीय लोगों ने कभी धर्म का प्रचार नहीं किया, क्योंकि वे सर्वदा योजनाएँ ही बनाते रहे; कुछ कैथॅलिक सन्त ही यह कर सके थे। उन्होंने बताया कि वे स्वयं नहीं, बल्कि जगदम्बा ही सब कुछ कर रही हैं और वे जो कुछ भी करें, उसका वे स्वागत ही करेंगे। एक बार जब शिवजी उमा के साथ कैलाश में बैठे थे। शिवजी सहसा उठकर कहीं जाने लगे। उमा ने पूछा, "कहाँ चले?" वे बोले, "वह देखो, मेरा वह सेवक मार खा रहा है। मुझे जाकर उसे बचाना होगा।" क्षण भर बाद ही शिव के लौट आने पर उमा ने पुन: पूछा, "लौट क्यों आए?" उत्तर मिला, "उसे मेरी ज़रूरत नहीं है। वह ख़ुद ही अपनी रक्षा कर रहा है।"

इसके बाद विदा लेने के पूर्व उन्होंने मुझे यह कहते हुए आशीष दिया, 'ठीक है, ठीक है! तुम माँ की सन्तान हो।' वह क्षण इतना महान् था कि मैं अत्यन्त अभिभूत होकर वहाँ से खिसक गई!

१५ जुलाई, १९०० : न्यूयार्क (मिस मैक्लाउड को)

आज सुबह उनकी गीता की कक्षा अभूतपूर्व थी। वह इस विषय पर एक सुदीर्घ चर्चा के साथ आरम्भ हुई कि सर्वोच्च आदर्श सबके लिए नहीं हैं। कुष्ठग्रस्त सन्त ने अपने घाव से गिरे हुए कीड़े को उठाकर फिर वहीं रखते हुए कहा था, "खाओ भाई, खाओ"; अहिंसा का आदर्श उस व्यक्ति के लिए नहीं है, जो इस वृत्ति को घृण्य या बीभत्स समझता है। अहिंसा का प्रयोग एक क्रुद्ध शिशु के प्रति माँ के स्नेह के समान होता है। यह कायर के मुख से निकलनेवाला या सिंह से सामना होने पर उच्चरित होनेवाला एक बहाना है।

वे बोले, "हमें सच्चा बनना होगा। हमारी जीवन-ऊर्जा का ९० प्रतिशत अंश लोगों के मन में अपने विषय में ऐसी धारणा बनाने के प्रयास में ख़र्च होता है, जो हम नहीं हैं। हम जैसा दिखाना चाहते हैं, वैसा बनने की चेष्टा में यदि हम उस ऊर्जा को लगाते, तो वह उसका बेहतर उपयोग होता।" इसके बाद वे इसी प्रकार बोलते गए। इसका प्रारम्भ एक अवतार को प्रणाम से हुआ था।

हे जगद्गुरु, आपके चरणों में प्रणाम है,
आपका पादपीठ देवताओं द्वारा भी पूजा जाता है।
आप अद्वैत अखण्ड आत्मा हैं,
संसार के रोगों के वैद्य हैं।
हे देवताओं के भी गुरु,
आपको हमारा प्रणाम है।

तस्मै श्रीगुरवे नमः, तस्मै श्रीगुरवे नमः, तस्मै श्रीगुरवे नमः
– आपको हमारा प्रणाम है, प्रणाम है, प्रणाम है।

यह स्तोत्र भारतीय सुर-छन्द में स्वयं स्वामीजी के कण्ठ से निःसृत हुआ था।

पूरे व्याख्यान में यह भाव निहित था कि समस्याओं पर पकड़ की दृष्टि से ईसा तथा बुद्ध – दोनों ही कृष्ण की तुलना में छोटे थे। ईसा तथा बुद्ध ने – सभी के लिए जीवन की सर्वोच्च नीतियों का प्रचार किया, जबकि कृष्ण ने समाज के विभिन्न अंगों के लिए भिन्न-भिन्न आदर्शों का प्रचार किया। जो लोग स्वामीजी के विचारों से अपरिचित हैं, उन्होंने यह नहीं समझा होगा कि उनकी इस घोषणा के पीछे यही भाव निहित था – "(ईसा का) पर्वतोपदेश (Sermon on the Mount) मनुष्य की अन्तरात्मा के लिए एक और बन्धन बन गया है!"

अब उनके सभी व्याख्यानों में 'जीवन को यथार्थ रूप से समझने तथा उसके प्रति सहानुभूति' का भाव ही व्यक्त होता है। अब 'नेति-नेति' के भाव पर ज़्यादा बल न होकर, उसकी जगह 'यह हुआ और अब ऐसा होगा' जैसे भाव ध्वनित होते हैं। परन्तु मुझे भय है कि अब पहली बार सुननेवाले लोगों के लिए उन्हें समझना पहले से भी अधिक दुरूह हो गया है।

दोपहर के भोजन के बाद उन्होंने बँगला काव्य और उसके बाद नक्षत्र-विज्ञान पर चर्चा की। उन्होंने इस शंका को स्वीकार किया कि तारे कहीं केवल दृष्टिभ्रम मात्र तो नहीं हैं! क्योंकि यदि मनुष्य के रहने योग्य पृथ्वी के समान करोड़ों ग्रह विद्यमान हों, तो फिर हमारे समान, किसी अन्य उन्नत रूप से विकसित ग्रह के जीवों ने अब तक हमें सन्देश भेजने का प्रयास क्यों नहीं किया!

उन्होंने सुझाया कि भौतिक धारणाओं में अतीन्द्रियता के तत्त्व को अस्वीकार करने की (वर्तमान) राष्ट्रीय प्रवृत्ति के कारण ही हिन्दू चित्रकला तथा मूर्तिकला को वीभत्स कहा जा रहा है। उन्होंने बताया कि वे स्वयं के अनुभव से यह जानते हैं कि अधिकांश भौतिक या जागतिक वस्तुओं के अतीन्द्रिय प्रतीक हुआ करते हैं, जो जड़वादी की दृष्टि में बहुधा उनके भौतिक रूप की तुलना में वीभत्स प्रतीत होते हैं। कल उन्होंने मुझे बताया कि बचपन में उन्हें शायद ही कभी पता चलता था कि वे कब निद्रामग्न हो गए। रंगीन ज्योति का एक पुंज उनकी ओर आता और वे मानों रात को उसी के साथ खेलते रहते। कभी-कभी वह पुंज उन्हें स्पर्श करके फटकर आलोक में बदल जाता और वे निद्रा में डूब जाते। श्रीरामकृष्ण ने सर्वप्रथम उनसे जो प्रश्न किए थे, उनमें से एक यह भी था, "क्या तुम सोते समय एक ज्योतिपुंज देखते हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "जी हाँ, क्या सभी लोग इसी प्रकार नहीं सोते?"

एक संन्यासी का कहना है कि यह एक अतीन्द्रिय शक्ति है, जो इस बात का द्योतक है कि उन्होंने ध्यान की शक्ति के साथ ही जन्म लिया था, न कि उसे इस जन्म में अर्जित किया। एक बात मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि 'अपनी अनुभूति के किसी भी स्तर को कभी भी न भूलने का' जो गुण स्वामीजी में विद्यमान है, वह महापुरुषों का एक लक्षण है। यह भी उनके द्वारा बुद्ध के उस अन्तिम दर्शन का एक अंश रहा होगा।

जब हम लक्ष्य पर पहुँच जाएँगे, तब हमें अपने पिछले जन्मों के बारे में जिज्ञासा न रह जाएगी। तब हमारे लिए अपनी अनुभूति के सोपानों का ही महत्त्व रह जाएगा; मारिया टेरेसा और पेट्रार्क तथा लारा की हमारे लिए कोई उपयोगिता नहीं रह जाएगी। यही बात वे समझाते हैं। अब मैं उनके पास बैठकर सुनती हूँ और सब कुछ बुद्धि को बड़ा सहज तथा इच्छाशक्ति को इतना अलभ्य प्रतीत होता है कि मैं स्वयं से कह उठती हूँ, "पिछले दिनों, कैसे अँधियारे बादलों ने मुझे ढक रखा था? निश्चय ही कोई भी वैसा अन्धा या अज्ञानी न होगा!" जब तुम सोचती थी कि मैं कठोर और असंवेदशील हूँ, तो तुम्हारी धारणा सच ही रही होगी। मैं वैसी ही रही होऊँगी और यह दीर्घ काल तक भावनाओं का सहारा लिए बिना केवल मन द्वारा ही वस्तुओं को देखने की चेष्टा का फल रहा होगा।

स्वामीजी अभी भक्ति तथा भावुकता के विरुद्ध हैं और इनसे छुटकारा पाने को कृत-संकल्प हैं। परन्तु वे जिस बुद्धि और हृदय के ऐक्य के साथ इसकी शुरुआत करते हैं, वह अपूर्व है! वे इन दोनों में से किसी को भी छोड़ सकते हैं, क्योंकि उनमें दोनों ही पूर्ण रूप से विकसित हैं और बाकी तो केवल साधना मात्र है। मैं सोचती हूँ कि हममें से अधिकांश के लिए अधिक-से-अधिक संवेदनशील होना ही अच्छा होगा।[१]

१. स्वामी विवेकानन्द की पावन स्मृतियाँ, अद्वैत आश्रम, सं. २०१३, पृ. ३६६-६९

क्या हम भी नींव की ईंट बन सकते हैं?

अजय कुमार पाण्डेय

अनु. सचिव, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ

बुलन्द इमारत पर रीझना स्वाभाविक है, लेकिन वे नींव की ईंटें भी धन्य हैं, जिन्होंने इमारत को बुलन्दी देने में कोई कोर-कसर नहीं रखी। अपने को दुनिया की नजरों से ओझल कर लिया। सारा भार वहन करके भी उफ तक नहीं की। उलटे इमारत को मजबूती देना अपना कर्तव्य समझा। कभी श्रेय लेने की होड़ नहीं की। सचमुच वे गुमनाम नींव की ईंटें भी प्रणम्य हैं।

बायें लक्ष्मीदास तथा दायें महात्मा गाँधी

ऐसी ही एक ईंट का नाम है लक्ष्मीदास। करमचन्द गाँधी अथवा कबा गाँधी के एक के बाद एक यों कुल चार विवाह हुए थे। अन्तिम पत्नी पुतली बाई से एक कन्या और तीन पुत्र हुए। रलियत की शादी वृन्दावन दास से हुई। मोहनदास करमचन्द गाँधी सबसे छोटे थे। तीनों भाई एक ही स्कूल में पढ़ते थे। बड़े भाई लक्ष्मीदास के प्रति गाँधीजी की अपार श्रद्धा थी। लक्ष्मीदास का भी गाँधीजी के प्रति प्रेम पिता के समान था। वे अपनी अन्तिम साँस तक गाँधीजी की मदद करते रहे।

गाँधी परिवार के पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान ब्राह्मण मावजी दवे थे। पिता करमचन्द गाँधी के स्वर्गवास के बाद छुट्टी के दिनों में वे गाँधीजी के घर आये। बड़े भाई लक्ष्मीदास के साथ बातचीत के दौरान उन्होंने परामर्श दिया कि मोहनदास को विलायत भेजा जाय, ताकि दीवानगिरी का प्रतिष्ठापक पद पुन: परिवार में आ सके। लक्ष्मीदास सोच में पड़ गये। पैसे कहाँ से आयेंगे? जहाँ से मदद की आशा थी, वहाँ से निराशा मिली। लेकिन बड़े भाई ने रुपयों का प्रबन्ध करने का बीड़ा उठाया। उनकी उदारता की सीमा न थी। पैसों का इन्तजाम हुआ। इंग्लैण्ड जाने के लिए बड़े भाई के साथ गाँधीजी बम्बई आये। बम्बई में परिचितों ने जून-जुलाई में लन्दन यात्रा के लिये मना किया। यह सागर में तूफान का समय होता है। लक्ष्मीदास बम्बई में अपने मित्र के घर गाँधी को रखकर राजकोट वापस चले गये, क्योंकि पूरा परिवार देखना था।

इसी बीच गाँधीजी के विलायत जाने की खबर जाति वालों को लगी। पंचायत बुलायी गयी। विलायत जाने से मना किया गया। गाँधीजी ने पंचायत के निर्णय को नहीं माना। पंचायत ने उन्हें जाति बहिष्कृत कर दिया। सगे बहनोई वृन्दावन दास भी पंचायत के निर्णय से डर गये, लेकिन बड़े भाई दृढ़ रहे और उन्होंने गाँधीजी को लिखा कि जाति के निर्णय के बावजूद विलायत जाने से मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा। ४ सितम्बर, १८८८ को एक जहाज रवाना होने वाला था। उससे यात्रा के लिए बड़े भाई की इजाजत मिल गयी, किन्तु जातिच्युत होने के डर से लक्ष्मीदास द्वारा दिये गये पैसे को भी बहनोई ने देने से इंकार कर दिया। ऐसी स्थिति में पुन: भाई के नाम पर ही एक परिवारीजन ने पैसा उपलब्ध कराया। गाँधीजी ने टिकट खरीदा और विलायत रवाना हुए। उस समय गाँधीजी की उम्र लगभग १८ वर्ष की थी।

विलायत में रहने के दौरान थोड़े समय के लिये गाँधीजी में सभ्यता सीखने की ललक पैदा हुयी और उन्होंने छिछला रास्ता पकड़ा। जहाँ शौकीन लोगों के कपड़े सिले जाते थे, वहीं गाँधीजी ने कपड़े सिलवाये। 'चिमनी' टोपी सिर पर पहनी। नाचना सीखा। वायलिन खरीदा। सभ्य बनने की यह सनक तीन महीने तक चली। स्वभाविक है, इस पर खर्च आया होगा। यह सभी खर्च बड़े भाई को वहन करना होता था। मंझले 'करसन भाई' से कोई मतलब नहीं था। गाँधीजी की पत्नी एवं उनका कुछ माह का छोटा बच्चा, सबकी देखभाल भी लक्ष्मीदास को करना था। सभ्य बनने के दौर में ही गाँधीजी ने बादशाही दिलवाले बड़े भाई से दोनों जेबों में लटकाने लायक सोने की एक बढ़िया चेन

मँगवायी। बड़े भाई ने उसे भी उपलब्ध करवाया।

लगभग तीन वर्ष बाद गाँधीजी जब विलायत से लौटे, तो बम्बई बन्दरगाह पर बड़े भाई वहाँ उपस्थित थे। वे छोटी-छोटी बातों का भी ध्यान रखते थे। माताजी के देहवसान की खबर विलायत में उन्होंने इसलिए नहीं दी कि गाँधीजी को आघात न लगे। घर पहुँचने पर उनको इसकी खबर दी गयी।

बड़े भाई को पैसे का, कीर्ति का और पद का लोभ बहुत था। गाँधीजी के विलायत से लौटने के कारण उन्होंने बड़ी-बड़ी आशायें बाँध रखीं थी। उनका दिल बादशाही था। गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उदारता उन्हें अपव्यय की सीमा में ले जाती थी। उन्होंने मान लिया था कि इंग्लैण्ड से बैरिस्ट्री पढ़कर छोटा भाई आयेगा, तो खूब पैसा कमायेगा। इसी आशा में उन्होंने घर खर्च बढ़ा लिया था। चीनी मिट्टी के बरतन आ गये। चाय काफी के बाद कोको भी बढ़ गया। बूट-मोजा और कोट पतलून भी घर में आ गया। खर्च बढ़ा, नवीनतायें आयीं पर खर्च की धन राशि का स्त्रोत कहीं नहीं था। सारा भार बड़े भाई के कंधों पर पड़ा। यहाँ तक की गाँधी के वकालत के लिये मुवक्किल खोजना, राजकोट से बम्बई वकालत के लिए सारी व्यवस्था करना भी बड़े भाई के ही जिम्मे था।

अभी जाति का झगड़ा मौजूद ही था। जाति में लेने को लेकर दो पक्ष हो गये थे। एक पक्ष, जो गाँधी जी को जाति में लेने के लिये सहमत हो गया था, उसे राजकोट पहुँचने पर लक्ष्मीदास ने जातिभोज दिया। गाँधीजी को इसमें कोई रुचि नहीं थी। बड़े भाई का अपने प्रति अगाध प्रेम देखकर गाँधीजी की सहमति बन गई। गाँधीजी की उनके प्रति भी अगाध भक्ति थी।

इन सब प्रयासों में खर्चा बढ़ रहा था। आय कुछ भी नहीं थी। फिर वकालत न चलने के कारण निराशा की स्थिति में गाँधीजी को बम्बई से राजकोट वापस आना पड़ा। वहाँ बड़े भाई के ही प्रयास से गरीब मुवक्किलों के अर्जी-दावे लिखने का काम मिलता था। थोड़ी आमदनी हो जाती थी, किन्तु अनुपात में खर्च अधिक था। भाई को ही लेकर एक अंग्रेज अधिकारी से गाँधीजी का विवाद हो गया। फलस्वरूप दोनों भाई दुखी रहने लगे।

इसी बीच लक्ष्मीदास के पास एक प्रस्ताव गाँधी जी के लिए आया। दक्षिण अफ्रीका जाना था। निवास तथा भोजन के खर्चे के अतिरिक्त १०५ पौण्ड एक वर्ष के लिए मिलेगा। गाँधी जी प्रसन्न हो गये। उनके मन में विचार आया, भाई को १०५ पौण्ड भेजूँगा, तो घर का खर्च चलाने में कुछ मदद मिलेगी। अप्रैल १८९३ में अपना भाग्य आजमाने के लिये फिर गाँधी अपनी पत्नी और दो बच्चों का भार अपने बड़े भाई पर सौंपकर दक्षिण अफ्रीका के लिये चल दिये।

विवशता में गाँधीजी नौकरी करने दक्षिण अफ्रीका गये। परिस्थितियाँ बदलीं। गाँधी भाई महात्मा बनने लगे। पैसे तो हजारों पौण्ड में आने लगे, लेकिन अब उनका परिवार बड़ा होने लगा। उन्हीं के शब्दों में पितृतुल्य भाई को लिखा – **''आज तक तो मेरे पास जो बचा, वह मैंने आपको अर्पण किया। अब मेरी आशा आप छोड़ दीजिए। अब जो बचेगा यहीं हिन्दुस्तानी समाज के हित में खर्च होगा।''**

गाँधीजी आगे लिखते हैं, ''भाई ने मेरी आशा छोड़ दी। एक प्रकार से बोलना ही बन्द कर दिया। पर जिसे मैं अपना धर्म मानता था, उसे छोड़ने से कहीं अधिक दुख होता था। मैंने कम दुख सहन कर लिया। फिर भी भाई के प्रति मेरी भक्ति निर्मल और प्रचण्ड बनी रही। भाई का दुख उनके प्रेम में उत्पन्न हुआ था। उन्हें पैसों से अधिक आवश्यकता मेरे सद्व्यवहार की थी।''

गाँधी अपने पितृतुल्य भाई के लिए फिर लिखते हैं, ''अपने अन्तिम दिनों में भाई पिघले। मृत्युशय्या पर पड़े-पड़े उन्हें प्रतीति हुई कि मेरा आचरण ही सच्चा और धर्मपूर्ण था। उनका अत्यन्त करुणाजनक पत्र मिला। यदि पिता पुत्र से क्षमा माँग सकता है, तो उन्होंने मुझसे क्षमा माँगी। उन्होंने लिखा कि मैं उनके लड़कों का पालन-पोषण अपनी रीति-नीति के अनुसार करूँ। स्वयं मुझसे मिलने के लिए वे अधीर हो गये। मुझे तार दिया। मैंने तार से ही जवाब दिया – ''आ जाइये''। पर हमारा मिलना बदा न था।''

भाई लक्ष्मीदास आपको कोटिश : प्रणाम। अभिलाषा है गाँधीजी की तरह आप सभी के बड़े भाई बनते रहें। नींव की ईट की तरह। ○○○

स्वामी विवेकानन्द की शिकागो वक्तृता और भारतीय नवजागरण

अवधेश प्रधान

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(गतांक से आगे)

२५ दिसम्बर, १८९५ को अमेरिका की कुछ विशिष्ट महिलाओं ने स्वामीजी की माता भुवनेश्वरी देवी को एक पत्र लिखा था, जो २३ फरवरी, १८९६ को मिरर में प्रकाशित हुआ। कहना न होगा कि इस पत्र में स्वामी विवेकानन्द और मेरी-पुत्र ईसा मसीह एक हो गए हैं। इस पत्र में स्वामीजी के 'भारतीय मातृत्व' विषयक व्याख्यान का उल्लेख है। स्वामीजी के प्रति अमेरिकी महिलाओं की भक्ति ही उनकी जन्मदायिनी माता के चरणों में निवेदित हुई है।

२३ फरवरी, १८९५ को हिन्दू ने ब्रुकलिन स्टैंडर्ड में प्रकाशित जो सामग्री पुनर्मुद्रित की उसमें ब्रुकलिन सोसाइटी में विवेकानन्द के भाषण की अत्यन्त सम्मोहन चित्रात्मक रिपोर्ट है। रिपोर्ट का आरम्भ ही इस वाक्य से होता है – आज मानो एक बार फिर प्राचीन वैदिक ऋषियों का कण्ठ स्वर सुनाई पड़ा। संवाददाता ने लिखा – विवेकानन्द अपनी विराट ख्याति से भी अधिक विराट हैं। उनके भव्य और प्रभावशाली व्यक्तित्व का उदात्त चित्र अंकित करने के बाद लिखा – शुद्ध अंग्रेजी में जब उन्होंने प्रेम, सहानुभूति और सहिष्णुता की वाणी सुनाई, तो ऐसा लगा कि जैसे वे सचमुच हिमालय के विख्यात ऋषियों के एक अभूतपूर्व नमूना हैं, सचमुच में एक नए धर्म के पैगंबर हैं, जिन्होंने ईसाई नैतिकता के साथ बौद्धों के दर्शन का समन्वय किया है।

१९-२१ अप्रैल, १८९५ के मिरर में हार्ट फोड्‌र्स डेली टाइम्स का संवाद उद्धृत है, जिसमें स्वामीजी की वक्तृता और उसके बाद श्रोताओं के साथ उनकी दिलचस्प बातचीत की रिपोर्ट तो है ही, उससे पहले उनकी उदार विचारधारा का उल्लेख करते हुए कहा गया है – ''तथाकथित अनेक ईसाइयों की तुलना में उनके विचारों के साथ ईसा मसीह के आदर्शों की विशेष एकता दिखाई देती है।''

५ मई, १८९५ के मिरर में रदरफोर्ड अमेरिकन में प्रकाशित समाचार पुनर्मुद्रित हुआ, जिसमें बताया गया है कि ३० दिसम्बर को ब्रुकलिन एथिकल सोसाइटी द्वारा आयोजित विवेकानन्द के व्याख्यान का आकर्षण निश्चय ही असाधारण था, वरना 'रिसर्च क्लब' के दो सदस्य गत रविवार की शाम को प्रचण्ड उत्तरी हवा के हमले की उपेक्षा करते हुए जमी हुई बर्फ के ऊपर से लम्बा कष्टदायक रास्ता पार करते हुए ब्रुकलिन में क्यों पहुँचते?

फेनालॉजिकल जर्नल में एडगर सी सील एम. डी. ने स्वामीजी पर एक लम्बा लेख लिखा। यह लेख भारत के अनेक पत्रों में प्रमुखता से छपा, जैसे – लाइट ऑफ द ईस्ट (सितम्बर, १९९५), थियोसॉफिकल थिंकर (५ अक्तूबर, १८९५), मिरर (५ अक्तूबर, १८९५), अमृत बाजार (२० फरवरी, १८९७)। इस लेख में स्वामीजी के शरीर के विभिन्न अंगों का विश्लेषण करते हुए बताया गया है कि उनका शरीर और मन सुसमन्वित और आर्य जाति का उत्कृष्ट प्रतिनिधि है।

न्यूयॉर्क हेराल्ड की संवाद सामग्री मद्रास मेल (२२ मार्च, १८९६) में पुनर्मुद्रित हुई - फिफ्थ एवेन्यू के एक होटल के स्वागतकक्ष में स्वामी विवेकानन्द प्रति रविवार को नि:शुल्क व्याख्यान देते हैं, कक्षाएँ लेते हैं, शिष्यों को दीक्षा देते हैं और ढेर सारी चिट्ठियों में प्रश्नों का उत्तर देते हैं। इसमें उनके दो विदेशी शिष्यों का परिचय भी दिया गया है। जब स्वामीजी से पूछा गया कि हिन्दू धर्म धर्मांतरण नहीं करता, तो उन्होंने कहा – ''जिस प्रकार प्राच्य जगत के लिए बुद्ध के पास एक संदेश था, उसी प्रकार पाश्चात्य जगत के लिए मेरे पास एक संदेश है।''

९ अप्रैल, १८९६ के मिरर में प्रकाशित न्यूयॉर्क हेराल्ड की सामग्री में यह समाचार है कि स्वामीजी के पास जो प्रमुख व्यक्ति उनके व्याख्यान सुनने आते हैं, उनमें एला व्हीलर विल्कॉक्स, श्री एवं श्रीमती फ्रांसिस लेगेट, कु. एमा थर्सबी, प्रो. वाइमैन जैसे लोग हैं। श्रीमती ओली वूल भी उनकी शिष्या हैं। हारवर्ड फिलोसॉफिकल क्लब में व्याख्यान के लिए उन्हें हमेशा आमंत्रित किया जाता है।

२५ अप्रैल, १८९६ को बंगाली ने डेट्रायट ईवनिंग न्यूज की यह संवाद सामग्री उद्धृत की – स्वामी विवेकानन्द यहाँ दो सप्ताह रहेंगे।... बिना पैसे के कक्षाएँ लेंगे, क्योंकि धर्म की शिक्षा डॉलर में बेची नहीं जा सकती। विगत तीन सप्ताहों में उन्हें न्यूयॉर्क में भारी सफलता मिली है, उनकी कक्षाओं में काफी लोग जुटे और बहुतों ने उनका धर्म भी स्वीकार कर लिया है। यहाँ से वे बोस्टन जाएँगे और हारवर्ड के छात्रों के बीच व्याख्यान देंगे। फिर एक सप्ताह शिकागो में बिताकर इंग्लैण्ड जाएँगे। ...वहाँ गर्मियाँ बिताकर भारत लौट जाएँगे।

१५ मई, १८९६ को ब्रह्मवादिन ने बोस्टन ईवनिंग ट्रांसक्रिप्ट की जो संवाद सामग्री उद्धृत की, उसमें स्वामीजी का अपनी शिक्षाओं के बारे में कथन है कि वेदान्त दर्शन अमूर्त वैज्ञानिक सत्य है, जो सभी पद्धतियों को स्वीकार करता है और मैं उसी बात की शिक्षा देता हूँ, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी भाव के अनुकूल निर्दिष्ट पथ पर चलते हुए प्रयोग कर सकता है। मैं प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अनुभव करने का परामर्श देता हूँ। जिन पुस्तकों का उल्लेख करता हूँ, उन्हें कोई लेकर पढ़ सकता है। ''स्वामीजी किसी गुप्त आचार्य या उपदेशक की बात नहीं कहते, किसी गुप्त ग्रंथ या पांडुलिपि से शिक्षा ग्रहण करने की बात तो हरगिज नहीं करते। वे यह नहीं मानते कि किसी गुप्त धार्मिक संस्था के द्वारा कोई मंगल कार्य हो सकता है। सत्य तो अपने ही पैरों पर खड़ा होता है।''

२७ मई, १८९६ को मद्रास ने बोस्टन ट्रांसक्रिप्ट की संवाद सामग्री पुनर्मुद्रित की – पिछले सप्ताह स्वामीजी ने जो व्याख्यान दिया, उसका विषय था - ''सर्वजनीन धर्म का आदर्श।'' स्वामीजी कोरे सिद्धान्त का प्रचार नहीं करते। हमने जो मान लिया है कि धर्म तो एक महान सिद्धान्त है, जिसका वास्तविक प्रयोग प्रत्यक्ष जीवन में सम्भव नहीं। स्वामीजी ने इस धारणा की भ्रान्ति स्पष्ट कर दी। मनुष्य के देवत्व की बात का प्रचार करते समय हमारे भीतर ऐसी शक्ति का संचार कर देते हैं कि इस जीवन की सब बाधा की चारदिवारियाँ टूट जाती हैं, जिन्हें जन साधारण हमेशा से दुर्लंघ्य मानते रहे हैं। इसके बाद इस रिपोर्ट में कर्म, भक्ति, ज्ञान और योग सम्बन्धी स्वामीजी के विचारों का सार संक्षेप दिया गया है और हारवर्ड विश्वविद्यालय के उनके व्याख्यान का कुछ अंश भी उद्धृत किया गया है।

६ जुलाई, १८९६ को हिन्दू ने स्वामीजी के गुरु-भाई रामकृष्णानन्द के नाम अमेरिकी समाज के कुछ प्रमुख व्यक्तियों के हस्ताक्षर से लिखा एक पत्र प्रकाशित किया, जिसमें उन लोगों ने अमेरिका में स्वामीजी के कार्यो के लिए धन्यवाद दिया था। पत्र में यह भी लिखा था कि हमारा देश और आप लोगों का देश एक मजबूत बंधन में बंध गया है और यह सब किया है स्वामी विवेकानन्द ने।... उनके यहाँ आने से पहले हमें पता ही न था कि बहुत दूर स्थित बहु प्राचीन हिन्दुओं के पास हमारी जैसी अत्यन्त तरुण जाति के लिए इतना अधिक ज्ञान और प्रज्ञा संरक्षित है।

६ जून, १८९६ को ब्रह्मवादिन ने अमेरिकी समाचार पत्र के हवाले से यह समाचार प्रकाशित किया था कि अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द के धर्म-प्रचार की आश्चर्यजनक सफलता को जारी रखने के लिए आलम बाजार मठ से स्वामी सारदानन्द को भेजा गया है। अमेरिका के अनेक विख्यात व्यक्ति स्वामीजी से वैदिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं – इस सूचना के साथ मिस फिलिप्स का यह कथन भी उद्धृत किया गया था कि हम स्वामीजी की शिक्षा के प्रकाश में नाजरथ के ईसा को और अच्छी तरह समझ पा रहे हैं। हमने ईसा का परित्याग नहीं किया है। हम किसी भी उपाय से, किसी भी आकार में, उपासना करने के लिए पूरी तरह से स्वतन्त्र हैं।

७ मई, १८९७ को मिरर में ब्रुकलिन से लिखा हेलेन हार्टिंगटन का पत्र प्रकाशित हुआ जिसमें अमेरिकी समाज पर स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव का प्रशंसात्मक उल्लेख है। हम ईसाई समाचार पत्रों के साथ लम्बे सम्पर्क और रुढ़िवादी गिरजाघरों में नियमित आते जाते रहने के कारण हिन्दुओं को अज्ञान के अन्धकार में आच्छन्न बेचारे अभागे 'हीदेन' मानने के अभ्यस्त हो गए थे, लेकिन करुणामय ईश्वर ने उसी भारत से स्वामी विवेकानन्द को भेजा, जिनका महान दर्शन हमारे देश के नीतिवादी वातावरण को भेद कर भीतर तक प्रवेश कर गया। उन्होंने हमारे समस्त उच्च आध्यात्मिक जगत को खोलकर रख दिया, ...उन्होंने हमारे आगे एक ऐसे धर्म का प्रचार किया, जो मत और पथ के बन्धन को स्वीकार नहीं करता, जो उन्नत करता है, पवित्र करता है, हृदय को अनन्त आश्वासन से पूर्ण कर देता है और निन्दा बिलकुल नहीं करता। उनका धर्म मनुष्य और ईश्वर के प्रति प्रेम द्वारा गठित है और पूर्ण चारित्रिक पवित्रता के ऊपर निर्भर है। हम उनकी शिक्षा ग्रहण करके ईसाई धर्म का खंडन नहीं करते। स्वामी विवेकानन्द की प्रशंसा करते हुए पत्र में लिखा गया था कि निन्दा या प्रशंसा उन्हें विचलित नहीं कर सकती; अनुमोदन या आपत्ति भी नहीं। संपत्ति या सम्मान उनको न प्रभावित कर सकता है, न पक्षपाती बना सकता है। अनुचित खुशामद के आगे वे संन्यासी-सुलभ उदासीनता बरतते हैं, ...अन्याय करनेवाले या किसी बुरा चाहनेवाले को भी धिक्कारते नहीं; केवल पवित्रता और साधु जीवन की महिमा को बुलन्द रखते हैं, आदि आदि।

स्वामी विवेकानन्द की शिकागो वक्तृता और अमेरिका में उनके धर्मप्रचार से सम्बन्धित समाचारों की दूसरी श्रेणी भारतीय पत्र-पत्रिकाओं के आवेग और उत्साह की देन है।

ब्राह्म समाज की पत्र-पत्रिकाएँ जब प्रताप चन्द्र मजूमदार की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर प्रचारित कर रही थीं, तब इंडियन मिरर के सम्पादक नरेन्द्र नाथ सेन ने हर प्रकार की भ्रांति का उन्मूलन करके विवेकानन्द की सच्ची भूमिका को आगे लाने में अग्रणी भूमिका निभाई। उसने अमेरिका समाचार पत्रों से तथ्यों का संग्रह करके पाठकों के बीच विवेकानन्द की वास्तविक छवि का प्रचार करने के लिए सम्पादकीय लिखना जारी रखा।

६ दिसम्बर, १८९३ को मिरर ने लिखा, सभी दर्शकों की आँखें एक मूर्ति पर अटकी हुई थीं – भारत के एकमात्र सच्चे प्रतिनिधि की मूर्ति पर। वे जहाँ भी गए, वहीं विजय प्राप्त की, वही स्वामी विवेकानन्द, संन्यासी के वेश में उपस्थित, सुन्दर सुडौल आकृति.... और आँखें - बड़ी, अत्यन्त उज्ज्वल हीरक खण्ड जैसी। महिलाओं तक ने इस बहिरंग आकार की आकर्षणी शक्ति को स्वीकार किया। लेकिन जब वे बोलना आरम्भ करते हैं, आवरण को हटाकर भीतर का मनुष्य बाहर निकल आता है, देखते हैं कि अब शक्ति कई गुना हो उठी है और विशाल श्रोतामण्डली हिन्दुओं के वैदिक धर्म की प्राणोत्तप्त व्याख्या भाव-विह्वल होकर सुने जा रही है।''[४]

मिरर ने १२ दिसम्बर के सम्पादकीय में लिखा- ''उनकी वक्तृता से ऐसा व्यापक आवेग पैदा हुआ है, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि उसने हलचल मचा दी। फलस्वरूप भारत और विश्व के धर्मों के इतिहास में एक नए युग की सृष्टि होने जा रही है।'' २० दिसम्बर को मिरर ने स्वामीजी के प्रारम्भिक जीवन के बारे में लिखा - कैसे वे ब्राह्म समाज में जाया करते थे, केशव चन्द्र सेन के साथ एक ही मंच पर धार्मिक नाटक में अभिनय करते थे, फिर किस तरह श्रीरामकृष्ण के पास पहुँचे, आदि। यह भी बताया कि श्रीरामकृष्ण ने बहुत पहले ही भविष्यवाणी की थी कि विश्वविख्यात केशव चन्द्र सेन की तुलना में अज्ञात युवक नरेन्द्रनाथ के भीतर अधिक शक्ति विद्यमान है। ''जो विवेकानन्द को जानते हैं, वे उनकी प्रचंड चरित्र-शक्ति, अदम्य इच्छाशक्ति और प्राचीन ऋषिसुलभ अपूर्व वैराग्य के बारे में बताते हैं।''

२१ फरवरी, १८९४ के मिरर में सम्पादक ने लिखा- हमें संदेह था कि धर्म महासभा के लिए 'क्या हमें कोई ऐसा मनुष्य प्राप्त होगा, जो हिन्दू हो और साथ ही समुद्रलंघन में जिसको कोई आपत्ति न हो... इसके बाद जब विश्वास योग्य समाचार मिला कि धर्म महासभा में विवेकानन्द ने सामर्थ्य, प्रज्ञा और वाग्मिता के साथ हिन्दू धर्म को उपस्थित किया है, तो हमारी सभी दुश्चिन्ताएँ दूर हो गईं।'' स्वामीजी की भूमिका के बारे में डॉ. बैरोज का मत प्रस्तुत करके सम्पादक ने लिखा, ''स्वामी विवेकानन्द की अमेरिका यात्रा और धर्मप्रचार का वास्तविक परिणाम वहाँ जो हो, इस बात में तो कोई संदेह नहीं हो सकता कि इसके माध्यम से, इस बीच सभ्य संसार में सच्चे हिन्दू धर्म की प्रशंसा भारी मात्रा में बढ़ गई है। इस कार्य के लिए स्वामी विवेकानन्द को समस्त हिन्दू जाति की कृतज्ञता प्राप्त होगी।''

१२ मार्च के सम्पादकीय में लिखा कि धर्म का महान नवयुग आने ही वाला है, जब घृणा और विद्वेष नहीं, प्रेम और मिलन ही आदर्श होगा। इसी क्रम में स्वामीजी की महान् उक्तियों को उद्धृत करने के बाद लिखा, ''जो सहिष्णुता और वैचारिक उदारता हिन्दू धर्म का अन्यतम प्रधान वैशिष्ट्य है और जो अन्य धर्मों से उसको बहुत कुछ अलग विशिष्टता प्रदान करती है, उसको विवेकानन्द से पहले विश्व की दृष्टि में इतने स्पष्ट और सजीव रूप से किसी और ने नहीं रखा था।''[५] कलकत्ता के देश में बंगवासी, हितवादी और बंगनिवासी ने भी इस सम्बन्ध में जागरूकता दिखलाई। 'हितवादी' ने लिखा, विवेकानन्द के द्वारा ''एक भिन्न देश में हिन्दुओं का गंभीर वैराग्य और धर्म भाव की आभा विकीर्ण होने लगी है, इससे हम विशेष रूप से प्रसन्न हैं। एक समय ईसा के वैराग्य और प्रेम ने जाकर नष्टप्राय रोमन सभ्यता में नवजीवन का संचार किया था, इस बार हिन्दुओं का वैराग्य और भक्ति भाव जाकर शरीर और विलास-प्रधान पाश्चात्य सभ्यता में सुधार लाएगा।''[६]

'लाइट ऑव द ईस्ट' पत्रिका ने अप्रैल, १८९४ के अंक में विस्तार से बताया कि स्वामीजी कैसा क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए हैं। जनवरी, १८९५ के अंक में 'विवेकानन्द' शीर्षक से एक लंबा लेख छापा। लाहौर के 'ट्रिब्यून' ने विवेकानन्द के बारे में कई समाचार छापे। २ फरवरी, १८९५ के अंक में सूचना दी कि विवेकानन्द और अन्य हिन्दू प्रचारकों के प्रभाव से अमेरिका में हिन्दू धर्म और संस्कृत साहित्य के प्रति आकर्षण बढ़ा है। वहाँ 'दि अमेरिकन, एशियाटिक ऐंड मैनुस्क्रिप्ट रिवाइवल सोसाइटी' नामक संस्था स्थापित हुई है, जिसका उद्देश्य है भारत की प्राचीन संस्कृत पाण्डुलिपियों का संग्रह और अँग्रेजी में अनुवाद।

शेष भाग पृष्ठ ५१४ पर

आध्यात्मिक जिज्ञासा (४६)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज! मन और मुख कैसे एक किया जाता है?

महाराज – सत्य का पालन करके।

– महाराज! सत्य कितना दूर तक व्यापक है?

महाराज – (बहुत गम्भीर स्वर में) महासर्वनाश होने पर भी सत्य को पकड़ कर रखना होगा।

प्रश्न – महाराज! क्या अन्तिम समय में उनकी (भगवान की) वाणी का चिन्तन होता है?

महाराज – (सहास्य) ऐसी बातें तो बुढ़ियाँ कहती हैं। अन्तिम समय की बात सोचने की क्या आवश्यकता है? वर्तमान की बात सोचो। यदि तुम वर्तमान का ध्यान रखते हो, तो भविष्य तुम्हारा स्वयं ध्यान रखेगा। वर्तमान का सदुपयोग करो, भविष्य स्वयं ठीक हो जाएगा। अभी करना होगा। बाद में क्यों? ठाकुर ने निरंजन महाराज को कहा था, अरे तुमने अब तक ईश्वर प्राप्ति नहीं की? उन्हें कब प्राप्त करोगे? यह नहीं कह रहे हैं कि बाद में करना। कैसी व्याकुलता है !

प्रश्न – महाराज, एक स्थान पर उल्लेख है – विकर्म करने की प्रवृत्ति के उदय होने पर उसका प्रतिबन्धक लोक-लज्जा अर्थात् लोग क्या कहेंगे आदि वृत्ति-विशेष के कारण अकर्म की प्रवृत्ति बाधित हो जाती है, उसका नाम ही ह्री है। महाराज इस विकर्म का क्या तात्पर्य है?

महाराज – यह निन्दनीय कर्म है। समाज के लिये जो कर्म निन्दनीय है, वही विकर्म है।

– विभिन्न समाज में निन्दनीय कार्य विभिन्न प्रकार के हैं।

महाराज – वह हो सकता है। जिस समाज में जो कार्य निन्दनीय है, उसका प्रतिबन्धक लज्जा ही उस समाज के लिए ह्री है।

प्रश्न – महाराज! हम लोग सुनते तो बहुत हैं, लेकिन धारणा क्यों नहीं हो रही हैं?

महाराज – सर्वदा विचार करना होगा। विचार करते-करते तत्त्व की धारणा होगी। इसीलिए कह रहे हैं –

आसुप्ते आमृते कालं नयेत् वेदान्तचिन्तया।

दद्यात् नावसरं किञ्चिदपि कामादिनां मनागपि।।

जब तक नींद न आ जाय, जब तक यह शरीर है, तब तक सर्वदा मन को वेदान्त-चिन्तन से पूर्ण रखना होगा। क्यों? जिससे कामादि को मन में प्रवेश का सुअवसर न मिल जाय। इसलिये उपनिषद का अध्ययन करो।

– महाराज ! ठाकुर सदा विचार करने को कह रहे हैं – ''हजार विचार करो, किन्तु अहंकार नहीं जाता।'' इसका उपाय क्या है?

महाराज – 'हजार विचार करो' का अर्थ है केवल चर्चा करना, अध्ययन करना नहीं है। उसे जीवन में लाना होगा, उसका जीवन में आचरण करना होगा। बहुत निरन्तर अभ्यास करना होगा। अभी सुन रहा हूँ, लेकिन संस्कार नहीं बन रहा है। बार-बार करते-करते संस्कार बनता है। बहुत कठिन है। केवल विद्वत्तापूर्वक विचार करने या चर्चा करने से नहीं होगा। इसीलिये हमें यह श्लोक बहुत अच्छा लगता है। यह सब आवश्यक है। यही सब हमलोगों की साधना है। यह सब करने से, साथ-साथ विचार करने से निश्चय ही उन्नति होगी। वह श्लोक है –

ना विरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।

नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

(कठोपनिषद, १/२/२४)

यहाँ प्रज्ञा का अर्थ चर्चा या विचार-विमर्श है। केवल विचार से नहीं होगा। इन सबकी साधना करनी होगी।

प्रश्न – महाराज! असूया और ईर्ष्या क्या दोनों एक हैं?

महाराज – नहीं, थोड़ा अन्तर है। अधिकांश एक समान

ही है। असूया का अर्थ दूसरे की उन्नति से असहिष्णुता है। ईर्ष्या हुई – जो वस्तु अपने पास नहीं है और वह दूसरे के पास है, उसे पाने की इच्छा करना। इसलिये दूसरा कोई भी उसे न पा सके, ऐसी भावना ईर्ष्या है।

प्रश्न – स्वामीजी ने कहा है – पराधीनता और कई वर्षों की दासता हमारे ईर्ष्या का कारण है। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – बहुत दिन पराधीन रहने से ये बात हमलोगों के मन में आई है। यद्यपि हमलोग अभी पराधीन नहीं हैं, तथापि यह बात उसी समय हमलोगों के मन में प्रवेश की है। शासकों को बहुत-सी सुविधाएँ और अवसर प्राप्त होते हैं, जिससे शासित वंचित रहते हैं, उसे प्राप्त करने की इच्छा से ही ईर्ष्या का जन्म होता है।

प्रश्न – महाराज! राजा महाराज एक स्थान पर कहते हैं – कर्म करने के लिए पहले कर्म में बहुत प्रेम चाहिए। दूसरा कर्मफल की और बिल्कुल ही ध्यान नहीं देना चाहिए। यही कर्मयोग का रहस्य है। महाराज कर्म में प्रेम का क्या तात्पर्य है?

महाराज – कर्म में प्रेम रहने से कभी भी वह बोझ के समान नहीं लगेगा। हमारे ऊपर किसी ने कार्य थोप दिया है, ऐसा नहीं लगेगा।

– किन्तु महाराज, इस कर्म-प्रेम द्वारा तो कर्म में आसक्ति होने की सम्भावना है।

महाराज – प्रेम माने आसक्ति क्यों? भगवान में प्रेम हमलोग नहीं करते हैं क्या? क्या वह आसक्ति है?

– भगवान में आसक्ति तो अच्छी बात है।

महाराज – उसी प्रकार, यदि कर्म निष्काम हो, अपने स्वार्थ के लिये न किया जाय, तब तो आसक्ति नहीं होगी।

प्रश्न – महाराज! कहा जाता है कि श्रीरामकृष्ण एक पद्धति हैं। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – ठाकुर का सबसे श्रेष्ठ भाव है – किसी के भाव को नष्ट नहीं करना। यही पद्धति है। जो जिस भाव से चल रहा है, जो जिस भाव का पथिक है, उसकी उसी भाव से सहायता करना। ठाकुर ने यही किया है और स्वामीजी ने भी किया है।

– ठाकुर तो दूसरे के भाव को समझते थे। हमलोग दूसरे के भाव को कैसे समझेंगे?

महाराज – समझने का प्रयास करना होगा। दूसरे के भाव को समझने का प्रयास कर उसी मार्ग से उसकी सहायता करनी होगी। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ५१२ का शेष भाग

'थियोसोफिकल थिंकर' ने कई बार, धर्म जागरण में विवेकानन्द की भूमिका पर लिखा। १३ अप्रैल, १८९५ को लिखा, "पवित्र हिन्दू धर्म के पूजनीय प्रवक्ता स्वामी विवेकानन्द ने संसार की धर्मभावना को प्रचंड रूप से आंदोलित किया है। वैदिक चिन्तन के बारे में उनकी प्रांजल व्याख्या ने हिन्दू धर्म के उत्कृष्ट गुणों के बारे में सभी धर्मों के अनुयायियों की, विशेष रूप से मिशनरियों की आँखें खोल दी हैं।"

'हिन्दू' ने स्वामीजी की भूमिका के बारे में कई और अत्यन्त उच्चकोटि के लेख छापे। उस समय 'हिन्दू' के सम्पादक थे जी० सुब्रह्मण्य अय्यर। जब भारत में शिकागो वक्तृता का समाचार पहुँचा। उसी समय 'हिंदू' ने स्वामीजी को बुद्ध और शंकराचार्य के तुल्य बताना शुरू किया। २३ दिसम्बर, १८९३ के सम्पादकीय में लिखा कि "कुछ अमेरिकी प्रेक्षकों ने स्वामीजी के चेहरे में बुद्ध का सादृश्य लक्षित किया है। लेकिन हम इसमें यह बात जोड़ना चाहते हैं कि यह सादृश्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता, वह स्वामीजी की मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विशिष्टता की ओर भी प्रसारित होता है और उन्होंने विश्व के समक्ष अपने व्यक्तित्व में एकबार पुन: शाक्य मुनि और शंकराचार्य के आदर्श, आकर्षण और शक्ति को उजागर किया है।"[७]

सबसे आश्चार्यजनक है अँग्रेजों द्वारा संचालित पत्रों में विवेकानन्द और उनके कार्य की प्रशंसा। अमेरिका और इंग्लैण्ड के पत्रों में इस तरह की सामग्री लगातार छपती देखकर ऐंग्लो-इंडियन पत्रों की इस विषय में जागरूकता और तत्परता स्वाभाविक थी। ऑक्सफोर्ड में प्रो. मैक्समूलर विवेकानन्द और उनके गुरु श्रीरामकृष्ण देव की ओर उन्मुख हो रहे थे। विवेकानन्द के प्रभाव से पाश्चात्य मनीषा भारत के प्रति अधिकाधिक आदरशील हो रही थी। इसका प्रभाव ऐंग्लों-इंडियन पत्रों पर कमोबेश पड़ना ही था। **(क्रमश:)**

सन्दर्भ सूत्र – **४.** विवेकानन्द ओ समकालीन भारतवर्ष, पृ० १४१, ४२, **५.** वही, पृ० १४२, **६.** वही, पृ० १४३, **७.** वही, पृ० १४७

ठाकुर, तुम मत ठुकरा देना

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

यह जीवन पूरा बीत गया,
विषयों के पंख सजाने में
स्वर्णिम यौवन भी गया व्यर्थ
इन्द्रिय-अश्व दौड़ाने में ।
इस कुपथ-मध्य में फँसे जीव को
राह सही दिखला देना ।
ठाकुर, तुम मत ठुकरा देना।।
नयन, दन्त, हर अंग शिथिल
मन निर्बल, दुर्बल काया।
अब ध्यान करूँ क्या भगवन् ,
मति में नाच रही है माया।।
बस आस-भरोसा है तेरा
गन्तव्य तक पहुँचा देना।
ठाकुर, तुम मत ठुकरा देना।।

करते रहिए सदा भजन

बाबूलाल परमार

भक्ति-भाव से भगवान के करते रहिए सदा भजन।
कभी न कभी तो जरुर सुनेगा दयानिधि भगवन।।
आज नहीं अब कल करेंगे, यह तो है उलझन।
कल कल के इस चक्कर में, पल-पल बीते जीवन।।
ध्यान-मनन-चिन्तन प्रभु का, यह कीजिए हरदम।
सुन लेगा वह अपने मन की, रहे निकलते दम।।
मानुष जन्म मिला यह दुर्लभ, समझा राखिए मन।
जप-तप-व्रत उपवास में साधो तन और मन।।
काम किए जा, राम भजे जा, यह सद्‌गुरु वचन।
सुबह-शाम आठों याम, रहे हरि-भजन में लगन।।
करुण पुकार कीजिए ऐसी की तन-मन हो कम्पन।
बाबूलाल की सुन ले विनती, दीनबन्धु भगवन।।

तुम मेरे नाथ ! तुम्हारा मै

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

शरणागत हूँ श्री चरणों में, हे नाथ! प्रणति स्वीकार करो।
अभिलाषा कोई और नहीं, बस प्यार करो तुम प्यार करो।।
इस भव की भूल-भुलैया में
थककर मेरा मन चूर हुआ,
माया की मोहक काया में
फँस करके तुम से दूर हुआ,
अब तो करुणाकर! करुणा कर भवसागर से तुम पार करो।
शरणागत हूँ श्री चरणों में, हे नाथ! प्रणति स्वीकार करो।।
मैंने देखा सारे जग में
प्रभु ! तुम-सा वत्सल और नहीं,
सबके प्रति पावन प्रेम भरा
तुम-सा सुखदायक और नहीं,
डगमगा रही जीवन-नौका, हे परमेश्वर भव-भार हरो।
शरणागत हूँ श्रीचरणों में, हे नाथ! प्रणति स्वीकार करो।।
अपनाओगे अब तुम मुझको
यों मेरा मानस बोल रहा,
साँसों में श्रद्धा का सौरभ
विश्वास निरन्तर घोल रहा,
तुम मेरे नाथ! तुम्हारा मैं, ऐसा कह अंगीकार करो।
शरणागत हूँ श्री चरणों में, हे नाथ! प्रणति स्वीकार करो।।
तुमने अनगिन जग-जीवों पर
जाने कितना उपकार किया,
फल देकर अपनी करुणा की
जड़मय जीवन से तार दिया,
'मधुरेश' पड़ा भवबन्धन में, हे नाथ! उठो-उद्धार करो।
शरणागत हूँ श्री चरणों में, हे नाथ! प्रणति स्वीकार करो।।

सेवा का व्यावहारिक स्वरूप

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

रोगी नारायण की सेवा करते स्वामी विवेकानन्द

सेवा मानव-जीवन का अभिन्न अंग है, किन्तु सेवा कैसे करें, सेवा करते समय किन-किन चीजों का ध्यान रखें, अब इस पर थोड़ी चर्चा करते हैं।

अनासक्ति से सेवा – हमें अनासक्त होकर सेवा करनी चाहिए। यदि व्यक्ति आसक्त होकर कुछ भी करे, तो वह उसके दुख का कारण बनता है। आइए, हम आसक्ति के कारण और उसके निवारण के सन्दर्भ में गहन विचार करके देखें। आसक्ति का प्राथमिक कारण हमारी आशाएँ होती हैं, जो हमारे मन में प्रलोभन के बीज बोकर हमें आसक्त कर देती हैं। आसक्ति के पीछे एक दूसरी शक्ति भी कार्य करती है, और वह है – 'मैं और मेरा भाव'। जहाँ 'मैं और मेरा भाव' आ जाता है, वहाँ सेवा की सीमाएँ बँध जाती हैं। हम अपने पुत्र, पत्नी या परिवार तक ही सीमित होकर रह जाते हैं। यह स्वार्थपरता ही हमें आसक्ति की बेड़ियों में बाँध लेती है। सेवा कभी भी हमारे बंधन या दुख का कारण नहीं होती, बल्कि आसक्ति ही हमारे दुख का कारण बनती है। पर यदि सेवा में सच्चा प्रेम हो, तो वह आसक्ति रूपी बेड़ियों को काट देता है। प्रेम में कोई आशा या अपेक्षा नहीं होती कि सेव्य हमें बदले में कुछ देता है या नहीं। यहाँ तक कि वह सोचता है कि तुम मुझे प्रेम करो या नहीं, पर मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ और करता रहूँगा। तब वह 'मैं और मेरा भाव' तक सीमित नहीं होता, प्रेम की बाढ़ उसे डूबा देती है।

इसके निवारण का एक और उपाय है – साक्षी की भाँति सेवा करना। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – "अतएव ठीक ढंग से कर्म करने के लिये यह आवश्यक है कि पहले हम आसक्ति का भाव त्याग दें। दूसरी बात यह है कि हमें स्वयं झंझट में उलझ नहीं जाना चाहिए। अपने को एक साक्षी के समान रखो और अपना काम करते रहो। मेरे गुरुदेव कहा करते थे, 'अपने बच्चों के प्रति वही भावना रखो, जो एक धाय की होती है।' वह तुम्हारे बच्चे को गोद में लेती है, उसे खिलाती है और उसको इस प्रकार प्यार करती है, मानो वह उसी का बच्चा हो। पर ज्यों ही तुम उसे काम से अलग कर देते हो, त्यों ही वह अपना बोरा-बिस्तर समेट तुरन्त घर छोड़ने को तैयार हो जाती है। उन बच्चों के प्रति उसका जो इतना प्रेम था, उसे वह बिल्कुल भूल जाती है। एक साधारण धाय को तुम्हारे बच्चों को छोड़कर दूसरे के बच्चों को लेने में तनिक भी दुख न होगा। तुम भी अपने बच्चों के प्रति यही भाव धारण करो। तुम्हीं उनकी धाय हो, – और यदि तुम्हारा ईश्वर में विश्वास है, तो विश्वास करो कि ये सब चीजें, जिन्हें तुम अपना समझते हो, वास्तव में ईश्वर की हैं।'[१]

सेवा सेवक के अनुसार या सेवक के इच्छानुरूप नहीं होती, बल्कि सेव्य के इच्छानुरूप सेवा कर लेना ही सेवक का धर्म होता है। यदि सेवक कभी सेव्य पर अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न करे, तब यह समझ लेना चाहिए कि वह स्वार्थ के मार्ग पर चल पड़ा है। ऐसी स्थिति में सेवक को अपने स्वार्थ भाव व आसक्ति; दोनों का त्याग कर देना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द जी आसक्ति के त्याग का उपाय बताते हैं – "आसक्ति का सम्पूर्ण त्याग करने के दो उपाय हैं। प्रथम उपाय उनलोगों के लिये है, जो न तो ईश्वर में विश्वास करते हैं और न किसी बाहरी सहायता में। वे अपने ही उपायों का प्रयोग कर सकते हैं, उन्हें अपनी ही इच्छा-शक्ति, मन:शक्ति एवं विवेक का अवलम्बन करके कहना होगा, 'मैं अनासक्त होऊँगा ही।' जो ईश्वर पर विश्वास करते हैं, उनके लिए एक दूसरा मार्ग है, जो इसकी अपेक्षा बहुत सरल है। वे समस्त कर्मफलों को ईश्वर को अर्पित कर कर्म करते जाते हैं, इसलिए कर्मफल में कभी आसक्त नहीं होते। वे जो कुछ देखते हैं, अनुभव करते हैं, सुनते हैं अथवा करते हैं, वह सब भगवान के लिये ही होता है।"[२]

सेवक का भाव – यूँ तो सेवक को सेव्य के इच्छानुसार ही सेवा करनी चाहिए, परन्तु कभी-कभी सेव्य

किसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य में अनिच्छा व्यक्त करें अथवा उसे करने या समझ पाने में असमर्थ हो, तब सेवक को किसी भी प्रकार उस कार्य को सम्पादित करवा लेना चाहिए। जिस प्रकार शिशु के कुछ समझने में असमर्थ होने पर माता उसके हित के लिए उसे कड़वी औषधियाँ पिला देती है, इंजेक्शन आदि लगवाती है या कष्टदायक शल्य चिकित्सा आदि करवा लेती है। इस परिप्रेक्ष्य में श्रीरामकृष्ण देव एक सुन्दर उदाहरण देते हुए कहते हैं – 'वैद्य तीन प्रकार के होते हैं, – उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य नाड़ी देखकर 'दवा खा लेना' कहकर चला जाता है, वह अधम वैद्य है। रोगी ने दवा खाई या नहीं, इसकी खबर वह नहीं लेता। जो वैद्य रोगी को दवा खाने के लिये तरह तरह से समझाता-बुझाता है, मीठी बातों से कहता है, 'अजी दवा नहीं खाओगे तो अच्छे किस तरह होगे! भैया, खा लो, अच्छा मैं खुद खरल करके खिलाता हूँ', वह मध्यम वैद्य है और जो वैद्य रोगी को किसी तरह दवा न खाते हुए देखकर छाती पर चढ़ बैठकर जबरदस्ती दवा खिलाता है, वह उत्तम वैद्य है।[३] एक सच्चे सेवक का भाव सदैव सेव्य का कल्याण करना होना चाहिए, चाहे इसके लिये उसे कठिन-से-कठिन निर्णय लेना पड़े अथवा किसी का प्रबल विरोध करना पड़े अथवा सेव्य के कल्याण हेतु स्वयं का विनाश या अपयश ही क्यों न सहना पड़े।

रामायण में सेवापरायण लक्ष्मणजी का एक प्रसंग आता है। लंका-विजय के पश्चात् रामजी अयोध्या के राजा होते हैं। एक दिन यमराज राम से मिलने के लिये आते हैं और कहते हैं कि आपसे मेरी वार्ता के बीच कोई न आये और यदि इस बीच कोई आ जाये, तो उसे आप मृत्युदण्ड देंगे। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने यमराज को ऐसा वचन दे दिया और लक्ष्मण को द्वार पर बैठा दिया कि यहाँ कोई प्रवेश न करे, अन्यथा प्रवेश करनेवाले को मुझे मृत्युदण्ड देना होगा। लक्ष्मण द्वार पर बैठे हुए थे। कुछ देर बाद ही वहाँ ऋषि दुर्वासा आ पहुँचे। ऋषि दुर्वासा लक्ष्मण से उनके आने की सूचना राम को देने के लिए कहते हैं। तब लक्ष्मण उन्हें विनम्रतापूर्वक मना कर देते हैं। इस पर दुर्वासा क्रोधित होकर सम्पूर्ण अयोध्या को श्राप देने की बात कहते हैं। लक्ष्मण के समय एक विकट स्थिति उपस्थित हो जाती है। यदि वे अंदर प्रवेश करते हैं, तो उन्हें मृत्युदण्ड दिया जायेगा, क्योंकि यह रघुकुल की रीति है कि राजा अपने वचन पर सदैव अडिग रहते हैं और यदि प्रवेश नहीं करते हैं, तो सम्पूर्ण अयोध्या को ऋषि के श्राप को भोगना होगा। परन्तु लक्ष्मण ने यह निश्चित किया कि राजपरिवार का प्रथम दायित्व अपनी प्रजा की सेवा है। अपनी प्रजा के हित के लिए उन्हें स्वयं दंड का भागी हो जाना चाहिए और वे तत्काल उस कक्षा में प्रवेशकर ऋषि दुर्वासा के आने की सूचना देते हैं। राम ने यमराज से शीघ्र ही अपनी वार्ता समाप्त कर ऋषि दुर्वासा की आव-भगत की। पर इसके पश्चात् राम के समक्ष दुविधा उत्पन्न हो गयी कि अब वे लक्ष्मण को मृत्युदण्ड कैसे दें? तब उन्होंने गुरु को स्मरण किया और गुरु ने उन्हें उपाय बताया कि प्रिय का त्याग करना भी मृत्युदण्ड के तुल्य होता है। तब राम ने लक्ष्मण का त्याग कर दिया। पर सेवापरायण लक्ष्मण की सेवापरायणता की इति यही नहीं हो जाती है। वे कहते हैं कि मेरे जीवन में श्रीराम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, अत: उन्हें त्यागकर मेरा जीवन असम्भव और निरर्थक है। चूँकि मेरे स्वामी ने यमराज को मृत्युदण्ड का वचन दिया था, अत: मुझे वही करना चाहिए और लक्ष्मणजी ने जल समाधि ले ली। यही सेवक की सेवा-भावना की पराकाष्ठा है, जहाँ वह अपने सेवा कर्तव्य का निर्वहण करने के लिए आत्मोत्सर्ग से भी नहीं हिचकता।

सेवा में व्यावहारिक बुद्धि – सेवक में सेवा-भावना के अतिरिक्त उस भाव को क्रियान्वित करने की व्यावहारिक बुद्धि का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति अचानक मूर्छित हो जाय और आप उसकी सहायता करना चाहते हैं, पर यदि आप यह नहीं जानते कि आपको तत्काल क्या करना चाहिए, तब आप की मात्र सेवा भावना से उसकी सेवा नहीं हो सकती।

स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज अपने जीवन की एक घटना कहते हैं, जिसमें उपरोक्त तथ्य को पुष्टि मिलेगी। बात उन दिनों की है, जब वे छात्र थे। वे लिखते हैं, ''एकदिन जब मैं घर से विद्यालय की ओर जा रहा था, मैंने देखा

कि एक आवारा कुत्ता सड़क के किनारे बुरी अवस्था में है। उसके शरीर पर गहरे घाव हो गये थे। उस समय हमारे घर में सल्फर रहता था और मैंने सोचा कि घाव के ऊपर यदि सल्फर लगाया जाये, तो कुत्ते को राहत मिलेगी। इसलिए मैं वापस घर गया और वहाँ से सल्फर लाकर कुत्ते के ऊपर लगाया। इसके बाद में विद्यालय गया। मन में बहुत प्रसन्नता थी कि उस कुत्ते की सहायता करके मैने बहुत बड़ा कार्य किया है। परन्तु विद्यालय से लौटते हुए मैंने देखा कि वह कुत्ता वहीं पड़ा हुआ है, जहाँ मैं उसे छोड़ गया था और वह अब अधिक दुर्बल दिख रहा था। उसने आस-पास उल्टी की थी। तब मुझे समझ में आया कि वास्तव में कुत्ते की सहायता करने के बजाय उसे हानि पहुँचाई है। कुत्तों में अपने घाव को चाटने की एक सामान्य प्रवृत्ति रहती है। उस कुत्ते ने भी अपने घाव को चाटा और घाव के ऊपर सल्फर होने के कारण वह रासायनिक द्रव्य उसके पेट में चला गया। इस अनुभव से मुझे यह बात समझ में आई कि केवल सेवा की भावना होने से ही किसी का कल्याण नहीं होता। सेवा किस तरह की जाए, इसका भी बोध होना चाहिए। कर्मयोग की साधना में हम निष्काम कर्म तो करते हैं, किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। हमें यह अवश्य जानना चाहिए कि निष्काम कर्म को किस प्रकार कुशलतापूर्वक करना चाहिए।''[४]

मातृभाव से सीखें सेवा – माताएँ आंतरिकता से सेवा करती हैं। वे संतान को समझती हैं और उसके अनुरूप ही सेवा करती हैं। उनकी सेवा में कोई छल नहीं होता, उपेक्षा नहीं होती। वे निःसंकोच संतान के मल-मूत्र साफ कर देती हैं। माताओं की सेवा के फलस्वरूप एक अबोध शिशु भी इतना अवश्य जानता है कि ये मेरी शुभचिन्तक हैं, मुझे प्रेम करती हैं। जिस प्रकार पलकें स्वतः ही आँखों की सुरक्षा करती हैं, उसी प्रकार माताएँ भी स्वाभाविक रूप से बच्चों की सेवा करती हैं। ऐसा नहीं कि मातृत्व का प्रकाश केवल मनुष्य जाति में ही है, बल्कि समस्त पशु-पक्षियों में भी यह उतना ही स्वाभाविक रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार हमें प्रत्येक मातृ-जाति से आन्तरिक व स्वाभाविक सेवाभाव सीखनी चाहिए।

सेवा करती माँ सारदा

सेवा में बाधक – श्रीरामचरितमानस में सुमित्राजी लक्ष्मणजी को सेवा का उपदेश देते हुए कहती हैं –

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू।
जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू।।
सकल प्रकार बिकार बिहाई।
मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।।

अर्थात् राग, द्वेष, ईर्ष्या, मद और मोह – इनके वश में स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, वचन और कर्म से श्रीसीतारामजी की सेवा करना।

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू।
सँग पितु मातु रामु सिय जासू।।
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू।।

अर्थात् तुमको वन में सब प्रकार से आराम है, जिसके साथ श्रीरामजी और सीताजी पिता-माता के रूप में हैं। हे पुत्र! तुम वही करना जिससे श्रीरामचन्द्रजी को वन में कोई क्लेश न हो, यही मेरा उपदेश है।[५]

सुमित्राजी के उपरोक्त उपदेश शत-प्रतिशत खरे हैं। सेवा करनेवाले को यदि किसी प्रकार की आसक्ति हो, तो वह पूरे मन के साथ कभी सेवा नहीं कर सकता। क्योंकि आसक्ति मन का हरण कर लेती है। मन का अधिकांश भाग आसक्ति की ओर चला जाता है और सेवा में मन कम होने के कारण सेवा में त्रुटि होने लगती है। उदाहरणार्थ सेवा करनेवाले को यदि गाने में आसक्ति हो, तब वह जब भी गाने का अवसर देखेगा, तब वह सोचने लगेगा कि गाना गाने की इच्छा को पूर्ण कैसे किया जाय तथा इसके लिए वह प्रयास करने लगेगा और परिणामतः वह अपने सेवा कार्य में या तो किसी-न-किसी प्रकार से विलम्ब करेगा या अन्य किसी के द्वारा उसे करवायेगा अथवा गाने की आसक्ति अधिक होने पर सेवाकार्य को भूल भी जायेगा। अतः सेवा करनेवाले को सेवानिष्ठ होना चाहिए, उसमें किसी प्रकार की आसक्ति का अभाव होना चाहिए, उसे मन-कर्म-वचन से सेवा को ही प्राथमिकता देनी चाहिए।

क्रोध व्यक्ति की बुद्धि का हरण कर लेता है और तब

वह कुछ भी उचित निर्णय करने में सक्षम नहीं होता। तब क्रोधी व्यक्ति अपने हठ में आकर अनुचित कर्म को ही कर बैठता है। यदि किसी वृद्धजन की सेवा करनी हो, तब क्रोधी व्यक्ति के लिए और भी कठिन हो जाता है। क्योंकि वृद्धावस्था में रोग से पीड़ित व्यक्ति का क्रोधित होना या झुंझलाना स्वाभाविक होता है, ऐसी स्थिति में यदि सेवा करनेवाला भी क्रोध में आ जाये, तो फिर सेवा में वहीं पूर्ण विराम लग जायेगा।

ईर्ष्या सेवा में बाधक है। ईर्ष्या का जन्म प्रतिद्वंद्विता से प्रारम्भ होता है। अन्य सेवा के बाधाओं में सेवाकार्य बाधित होता है, परन्तु ईर्ष्या के क्षेत्र में आश्चर्य का विषय यह है कि सेवाकार्य तो पूर्ण हो जाता है, पर सेवकों के मध्य सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। क्योंकि उनके बीच ईर्ष्या का भाव होने के कारण वे सदैव प्रयास करते हैं कि यह सेवा मेरे द्वारा होनी चाहिए। ईर्ष्यावश वे यह प्रमाणित करने का प्रयास करने लगते हैं कि दूसरा भूल कर रहा है। ईर्ष्या का विनाश तभी सम्भव है, जब हम आपसी स्वार्थ, नाम, यश को छोड़कर सेवा के उद्देश्य में एक हों। अपनी महत्ता सिद्ध करने के स्थान पर संघबद्ध कार्य (टीम वर्क) को महत्त्व दें। सौतें कभी सुखपूर्वक नहीं रह सकतीं, क्योंकि उनके बीच ईर्ष्या होती है। उसी प्रकार सेवकों के मन में यदि ईर्ष्या हो, तो वे सुखपूर्वक नहीं रह सकते हैं।

मदमस्त व्यक्ति के लिये सेवा असम्भव होती है। क्योंकि सेवा के लिये विनम्रता की आवश्यकता होती है। अत: सेवक को सदैव अपने अहंकार का त्याग कर ही सेवा-कार्य में लगना चाहिए।

मोह के जाल में फँसे हुए व्यक्ति का मन अपने विषय की ओर खींचा हुआ रहता है, जिसके कारण वह पूरे मन से सेवा में सक्षम नहीं हो पाता। मोहित व्यक्ति सदैव पक्षपात भी करता है, अत: उसे जहाँ जितनी, सेवा-सुविधाएँ देनी चाहिए थीं, वहाँ वह नहीं कर पाता। इतिहास में धृतराष्ट्र पुत्र-मोह का ऐसा उदाहरण है, जिसने अपने पुत्रों के लाभ के लिए अपना दायित्व अर्थात् प्रजा का हित भी छोड़ दिया और अन्याय को समर्थन देता रहा।

आलस्य सेवा में बाधक होता है। एक आलसी व्यक्ति अपनी व्यवस्था करने में ही अक्षम होता है, ऐसे में किसी की सेवा कर पाना उसके लिए असम्भव होता है। सेवक का भाव सदैव अथक प्रयास करने का होता है। हनुमानजी कहते हैं – **राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम** – अर्थात् श्रीरामचन्द्र का काम किये बिना मुझे विश्राम कहाँ?[६]

सेवा के लिए पवित्रता अत्यन्त आवश्यक है। पवित्रता के अभाव में सेवा में दोष आने लगते हैं। जब कामोन्मत्त व्यक्ति कामाग्नि से उत्तेजित होता है, तब वह काम का चिंतन तथा उसे तृप्त करने के लिये व्याकुल हो जाता है। इस प्रकार उसकी अधिकांश शक्ति नष्ट हो जाती है और मन भी कलुषित हो जाता है। ऐसे में सेवा कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त दोषों के कारण हम सेवा जैसे श्रेष्ठ कार्य में विभिन्न बाधाओं के शिकार हो जाते हैं। अत: हमें चाहिए कि हम इन दोषों या बाधाओं को दूर कर अपने सेवा यज्ञ को पूर्ण करें। OOO

सन्दर्भ सूत्र – १. विवेकानन्द साहित्य ३/६३, **२.** वही, ३/७५, **३.** श्रीरामकृष्ण वचनामृत खण्ड १/१०० या २८ अक्टूबर १८८२, **४.** Life in Indian Monasteries, Swami Bhaskarananda 182-183, **५.** रामचरित मानस/अयोध्याकाण्ड/७४/५-८, **६.** रामचरित मानस ५/१

पृष्ठ ४८८ का शेष भाग

कच्चा पपीता, कच्चा केला इत्यादि के साथ झोल बनाकर दिया जाता था। उसमें तेल और मसाला नाम मात्र रहता था। एक दिन मैंने उनसे कहा, 'आपको स्वाद में अरुचि नहीं लगती? क्या सब्जी थोड़ी बदल दूँ?' उन्होंने कहा, 'नहीं। तुम जैसे देते हो, वैसे ही देते रहो।' वे रुचि-अरुचि से परे द्वन्द्वातीत अवस्था में रहने का प्रयत्न करते थे।

स्वामीजी की जन्मशती का उत्सव चल रहा था। पार्क सर्कस के विशाल मैदान में सारे कार्यक्रम होते थे। अद्वैत आश्रम अतिथियों से भरा हुआ था। हमलोग अपनी शय्या छोड़कर जमीन पर चटाई बिछाकर सोते थे। भोजन के लिए मात्र एक रसोइया था। वह पच्चीस-तीस लोगों का भोजन बनाकर सुबह उठ नहीं पाता था। मैं सुबह पाँच बजे रसोइघर में जाकर आटा सानने लगता और साथ-साथ जप भी करता। नाश्ते के समय साढ़े छह बजे घण्टी नहीं बजने पर गम्भीर महाराज खट्खट करते हुए सीढ़ी चढ़कर ऊपर आते और रसोइघर में झाँककर बोलते, 'May I help you?' – क्या मैं तुम्हारी सहायता करूँ? **(क्रमश:)**

जीवन में शान्ति-प्राप्ति का रहस्य

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। – सं.)

आधुनिक जीवन विज्ञान और तकनीक की भाषा से आलोकित है। विज्ञान की उपलब्धियाँ अपूर्व हैं। आज विज्ञान की सहायता से मानव अन्तरिक्ष को भेदकर चन्द्रमा पर उतर गया है और मंगल ग्रह में जाने की तैयारियाँ कर रहा है। वैज्ञानिक आज प्रयोगशाला में टेस्ट ट्यूब बेबी के निर्माण में लगा हुआ है और उसने भ्रूण को छ: मास तक जीवित रखने में सफलता भी पा ली है। शायद वह दिन दूर नहीं जब मनुष्यों का भी निर्माण कारखाने में होने लगेगा। यह कल्पना की जा रही थी कि अभूतपूर्व वैज्ञानिक सफलताओं के द्वारा एक ओर जहाँ मानव का भौतिक जीवन समृद्ध हो रहा है, उसी प्रकार मानव का मानसिक जीवन भी समृद्ध होगा, वह अधिक सुखी और शान्त होगा, किन्तु यथार्थ इसका उलटा दिखायी दे रहा है। भौतिक समृद्धि के साथ मन के धरातल पर अशान्ति ही बढ़ी है और मानव आज शान्ति को दवाओं और पेयों में खोज रहा है। आज का जीवन तनावग्रस्त है और इन तनावों से हरदम के लिये छुटकारा पाने का कोई मार्ग सामने न दिख पड़ने के कारण, मानव आशु-मुक्ति के साधनों का उपयोग कर कुछ क्षणों के लिये ही सही, इस संसार की विभीषिका को भूल जाना चाहता है। उसके पास धन है, वैभव की सामग्रियाँ है, सोने के लिये डनलप के मोटे-मोटे गद्दे और कुशन हैं, पर उसकी आँखों की नींद हवा हो गयी है, उसे ट्रांक्विलाइजर्स लेकर सोना पड़ता है। उसके पास भोजन के एक से एक सुस्वादु पदार्थ हैं, पर वह अजीर्ण के रोग से आक्रान्त होकर बेचैनी से करवट बदलता रहता है। अमेरिका जैसे सम्पन्न देश में मनुष्य कितना विक्षुब्ध है, इसकी झलक राबर्ट एस.टी. राप की पुस्तक 'ड्रग्ज एंड दि माइन्ड' में मिलती है। राप कहते हैं, 'In one year alone i.e. in 1965-66, the sale of tranqrillizers in American soared to 112 million dollears. Willion more are acent on alcohol." ... यानी, एक वर्ष में ही अर्थात् १९६५-६६ में अमेरिका में ट्रांक्विलाइजर्स की खपत ११२ करोड़ रुपयों की हुई। शराब आदि पर तो इससे भी अधिक रुपये खर्च किये गये हैं। यह कहकर राप पूछते हैं, can we disapoined happiness in pills? – क्या हम सुख को गोलियों में भरकर दे सकते हैं?

प्रश्न उठता है कि इतनी भौतिक प्रगति के बावजूद इतना मानसिक विक्षोभ क्यों है? आधुनिक जीवन इतना अशान्त क्यों हैं? सामान्य विवेचना कहती है कि असन्तोष से अशान्ति का जन्म होता है। तो फिर प्रश्न किया जा सकता है कि आज इतना असन्तोष क्यों? यदि हम असन्तोष के कारणों को ढूँढ सकें और उनको दूर करने का पथ जान सकें, तो अशान्ति का बीज दग्ध हो सकता है।

विचार करने पर असन्तोष के दो प्रमुख कारण दीख पड़ते हैं – एक है दिशाहीनता और दूसरा है भोगवाद। दिशाहीनता से तात्पर्य यह है कि आज का मनुष्य तेजी से भाग तो रहा है, पर वह नहीं जानता कि उसे कहाँ पहुँचना है। वह बहुत से साधन विज्ञान की सहायता द्वारा बनाकर प्रस्तुत तो कर रहा है, पर नहीं जानता कि इन साधनों का उपयोग किस प्रकार करना है। वह प्रकृति की महत्तर शक्तियों पर आधिपत्य तो प्राप्त कर रहा है पर नहीं जानता कि अपने इस अधिकार का उपयोग किस साध्य को पाने के लिए करें। बर्ट्रेंड रसेल इस स्थिति का चित्रांकन करते हुए अपने "हैम्पैक्ट ऑफ साइन्स आन सोसायटी" नामक प्रबन्ध में लिखते हैं – "हम ऐसी मानव जाति के मध्य में खड़े हैं, जो एक ओर तो साधनों के उत्पादन में बड़ी कुशल है, पर दूसरी ओर साध्य के सम्बन्ध में बड़ी मूर्ख है। यदि साध्य के सम्बन्ध में पर्याप्त मूर्खता बनी रहे, तो उसे प्राप्त करने के लिए कौशल में जो भी वृद्धि की जाय, वह अशुभ ही होगी। मानवजाति अब तक अज्ञानता और असमर्थता के कारण ही बची रही है। पर यदि ज्ञान और सामर्थ्य का योग मूर्खता से हो जाय, तो मानव-जाति के बचे रहने में संशय है। ज्ञान एक शक्ति है, पर जितनी वह अच्छाई के लिये शक्ति है, उतनी ही बुराई के लिए भी। अतएव, जब तक मनुष्य विवेक के क्षेत्र में भी उतना ही नहीं बढ़ता, जितना कि ज्ञान के क्षेत्र में, तो नॉलेज (ज्ञान) की वृद्धि से केवल दुखों की ही वृद्धि होगी।"

रसेल के अनुसार मनुष्य की साध्य सम्बन्धी मूर्खता ही उसकी अशान्ति का कारण है। वे दो शब्दों का उपयोग करते हैं – नॉलेज और विज्डम। उनके मतानुसार नॉलेज भले ही साधन सम्बन्धी ज्ञान दे सके, पर साध्य सम्बन्धी ज्ञान तो विज्डम से ही मिला करता है। नॉलेज के बल पर मानव आज अपने से भिन्न वस्तुओं और सुदूर ग्रह-नक्षत्रों की जानकारी प्राप्त करने में समर्थ हो रहा है, पर उसमें विज्डम का अभाव होने के कारण यह नहीं जानता कि वह स्वयं कौन है। इसी को हमने दिशाहीनता के नाम से पुकारा है। अपने से भिन्न सब कुछ को जानने की चेष्टा करना, पर अपने स्वयं को जानने का प्रयास न करना लक्ष्यहीनता का परिचायक है। यह लक्ष्यहीनता मानव के मस्तिष्क में दिग्भ्रम पैदा करती है, जिससे उसका मन द्वंद्वों से घिरकर अशान्त हो जाता है। इसीलिए वेदान्त में शान्ति के खोजियों को राह प्रदर्शित करते हुए कहा है – 'आत्मानं विजानीहि' – अपने आपको जानो।

मनुष्य का अपना अस्तित्व ही विश्व का सबसे बड़ा रहस्य है। यह रहस्य जब तक मानव अपने लिये नहीं खोल लेगा, तब तक वह बेचैन और अशान्त बना रहेगा। लिंकन बार्नेट अपनी "The Univerce & Dr. Instins". नामक विश्व प्रसिद्ध पुस्तक में इस रहस्य की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं - ''मनुष्य स्वयं अपना सबसे बड़ा रहस्य है। वह इस विशाल अवगुंठित विश्व को नहीं समझता, नहीं वह यह समझता है कि उसे इस रहस्यमय विश्व में क्यों भेजा गया है। अपने शरीर-यंत्र की प्रक्रियाओं को तो वह बहुत कम ही जानता है। उससे भी कहीं कम वह अपने चतुर्दिक संसार को देखने की, तर्क करने की ओर ताना-बाना बुनने की अपूर्व सामर्थ्य को जानता है। और उसमें अपने आपको लांघ जाने की तथा देखने की क्रिया में अपने आपको देखने की जो सबसे उदात्त और निगूढ़ क्षमता है, उसे तो वह सबसे कम ही समझता है।''

लिंकन बार्नेट शान्ति का उपाय मानव-रहस्य के उद्घाटन में तथा अपने आपको लांघ जाने में देखते हैं। वस्तुत: देखने की क्रिया में अपने आपको देखने की क्षमता आत्म-साक्षात्कार की अवस्था है, जहाँ मन पूरी तरह निर्द्वन्द्व हो जाता है। इसी स्थिति को मानव-जीवन के परम प्रयोजन की प्राप्ति भी कहते हैं। यही वेदान्त का अभिलषित लक्ष्य है। इस लक्ष्य का सतत चिन्तन और स्मरण दिशाहीनता की बाधा को दूर करता है।

असन्तोष का दूसरा प्रमुख कारण है – भोगवाद। भोगवादी सोचता है कि वासनाओं के उपयोग से उनकी शान्ति होती है। इसके बदले यदि वासनाओं को दबाने की कोशिश की जाय, तो यह शमन मानसिक कुण्ठाओं को जन्म देता है। मानसिक कुण्ठाएँ ही कालान्तर में शारीरिक रोग के रूप में उभरा करती हैं। अत: भोगवादी त्याग और तितिक्षा में विश्वास नहीं करता। बस अपनी इन्द्रियों को खुली छूट दे देता है। पर दुर्भाग्य यह है कि वह नहीं समझता कि एक कुण्ठा से बचने जाकर वह अनेकविध नयी कुण्ठाओं का शिकार बना जा रहा है। आधुनिक जीवन यही भोगवादी, कुण्ठाग्रस्त जीवन है, जो बेचैन है और जो शान्ति की खोज चरस, एल.एस.डी, भांग और गांजे में कर रहा है। भारत में कामनाओं की शान्ति का उपाय उनका उपयोग नहीं माना गया, बल्कि विवेकपूर्वक उनका शमन ही शान्ति का रसायन निरुपित हुआ। राजा ययाति का अनुभव इस प्रसंग में उल्लेखित है। वे कहते हैं –

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।
यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात् तृष्णां परित्येजत्।।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।।

- कामनाओं की निवृत्ति उनके उपभोग से नहीं होती, बल्कि घी डालने पर प्रज्वलित अग्नि के समान वे और भी बढ़ जाती हैं, पृथ्वी में जितना अनाज सोना, माणिक्य, पशु-धन और स्त्रियाँ हैं, वह सब एक व्यक्ति के लिये भी पर्याप्त नहीं है। अतएव तृष्णा का त्याग करना चाहिए। जो दुर्बुद्धियों के लिए दुस्त्यज है, जो भोगी के जीर्ण होने पर भी जीर्ण नहीं होती, जो प्राण हरने वाला रोग है, ऐसी तृष्णा को त्यागने से ही सुख मिलता है।

पर तृष्णा का यह त्याग एकदम से सम्भव नहीं हो पाता। इसके लिये हमें नि:स्वार्थ कार्यों में रुचि बढ़ानी पड़ती है तथा सेवा कार्यों में भाग लेने का अधिकाधिक अभ्यास करना पड़ता है। जो कार्य नि:स्वार्थ भाव से दूसरों के हित के लिए किये जाते हैं, वे हमारी तृष्णा की जड़ पर कुठाराघात करते हैं। अतएव शान्ति की पहल और सेवाभाव; ये ऐसे दो साधन हैं, जो जीवन में शान्ति की प्रतिष्ठा करते हैं। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२२)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

आलमबाजार मठ तथा सेवाव्रत का प्रारम्भ

आलमबाजार मठ में

१८९० ई. में मैंने स्वामीजी को साथ लेकर हिमालय की यात्रा की थी। १८९५ ई. में जयपुर में स्वामी अभेदानन्द के हार्दिक अनुरोध पर मैं मठ का महोत्सव देखने के लिये वहाँ आने को बाध्य हुआ।

जयपुर में अभेदानन्द तथा निर्मलानन्द के साथ भेंट हुई थी। अलवर में स्वामीजी के जो भक्त-शिष्य थे, स्वामीजी ने मुझे उन लोगों की एक समिति बनाने को लिखा था। उसी उद्देश्य से मैं ८-१० दिन स्वामीजी के शिष्य गोविन्द सहाय जी के घर पर ठहरा था। वहाँ एक साप्ताहिक सभा आरम्भ करने के बाद मैंने दिल्ली की यात्रा की। दिल्ली में कुछ दिन बिताकर इटावा तथा इलाहाबाद होते हुए मैं आलमबाजार मठ लौट आया। उन दिनों मठ में प्रेमानन्द, निरंजनानन्द, शिवानन्द, रामकृष्णानन्द, अद्भुतानन्द तथा सच्चिदानन्द (बूढ़े बाबा) आदि निवास करते थे।

स्वामी ब्रह्मानन्द (राजा), योगानन्द, सारदानन्द और त्रिगुणातीतानन्द आदि प्राय: कलकत्ते में ही रहते थे। स्वामीजी के अमेरिका से पहली बार लौटने के पूर्व, दो वर्षों के दौरान आलमबाजार मठ में जो घटनाएँ हुई थीं, उनका संक्षेप में वर्णन करता हूँ। वराहनगर मठ से बाहर निकलने के छह वर्ष बाद १८९५ ई. के अन्तिम दिनों में मैं आलमबाजार मठ में लौटा था।

आलमबाजार मठ का परिचय

आलमबाजार चौराहे के निकट ही दक्षिण की ओर एक पक्के दुमंजले भवन में उन दिनों हमारा मठ स्थित था। आलमबाजार मठ-भवन के सामने रास्ते की ओर ऊपर से नीचे तक दो-दो खम्भों से युक्त बरामदा था। मकान का मुख्य द्वार पश्चिम की ओर था। भवन में प्रवेश करते ही एक बड़ा आंगन तथा पूजा का दालान मिलता था। ऊपरी मंजिल पर पहुँचने के लिये सामने तथा भीतर से दो सीढ़ियाँ थीं। सामने की सीढ़ी से ऊपर जाने से पूर्व-पश्चिम का लम्बा कमरा बैठकखाने के रूप में उपयोग होता था। ऊपर में ही अन्दर की ओर ठाकुरघर, तीन शयनकक्ष तथा भण्डारघर था; नीचे रसोईघर और उसके सामने के बरामदे में भोजन का स्थान था।

स्वामी अखण्डानन्द

मठ के ठीक सामने ही जयकृष्ण चट्टोपाध्याय का विशाल खम्भोंवाला मकान था। मठ-भवन काफी बड़ा था, परन्तु किराया केवल दस रुपये मासिक था। इसका कारण यह किम्वदन्ती थी कि इस मकान में दो लोगों ने आत्महत्या की थी। इसीलिये उस मकान के लिये कोई किरायेदार नहीं मिलता था। जैसे वराहनगर मठ-भवन की निचली मंजिल खर-पतवार से भरी हुई तथा साँपों का निवास थी, वैसे ही यह मकान भूतों का आवास था।

यहाँ आकर रामकृष्णानन्द के मुख से सुना कि मठ का काफी समय चरम अभाव की अवस्था में गया है; यहाँ तक कि ठाकुर को भोग में थोड़ी-सी मिश्री का शरबत देने को दो-चार पैसे तक नहीं जुटते थे। एक मेज में दो ड्रायर थे, जो भी थोड़े-बहुत रुपये-पैसे रहते, वे उन्हीं में रखे जाते थे। वह मेज अब भी बेलूड़ मठ में ज्ञान महाराज के कमरे में रखी हुई है।

अत्यन्त अभावग्रस्त होकर रामकृष्णानन्द जब कभी सोचते कि अब ठाकुर को भोग में क्या देंगे, तभी स्वर्गीय महेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय की पत्नी द्वारा भेजा हुआ मिश्री का एक डला, हण्डी भर नवीन के रसगुल्ले तथा ठाकुरसेवा

की अन्य चीजें एक नौकर के सिर पर रखकर मठ में आ पहुँचतीं। ऐसा अनेकों बार हुआ है। रामकृष्णानन्द ने बताया था कि अभाव के समय उनके समान ठाकुर-सेवा के लिये वस्तुएँ भेजकर अन्य किसी ने भी उन्हें निश्चिन्त नहीं किया। उनके प्रति रामकृष्णानन्द की बड़ी श्रद्धा थी। बीच-बीच में मैं भी उनसे मिलने जाता। उनका मेरे प्रति बड़ा स्नेह था।

मठ में हम लोग प्राय: दाल, भात तथा चच्चड़ी (सब्जी) मात्र खाते थे। किसी-किसी दिन दाल के साथ पके हुए सूखे नारियल के टुकड़े हम लोगों की सब्जी खाने की इच्छा पूरी करता। रात की रोटी को घी का स्पर्श तक नहीं मिलता था। एक दिन किसी सज्जन ने ठाकुर-सेवा के लिये थोड़ा-सा दूध भेजा था। वह मानो 'बिल्ली के भाग्य से छीका टूटा' के समान लगा था। भोजन के लिये बैठने के पूर्व हम लोग आपस में कहने लगे – आज ठाकुर का दूध-प्रसाद है। दूध पीने से बल आता है। हम लोगों के पत्तल में एक करछुल दूध पड़ते ही चारों ओर से आवाज उठी, "क्यों जी, बल मिल रहा है; अजी बल पा रहे हो न?" उस आनन्द-कलरव से उस दिन मठ-भवन मुखरित हो उठा था। हम लोगों के जीवन का वह काल कितने विमल आनन्द में बीता है, इस विषय में और भी बहुत-सी कितनी ही घटनाएँ बतायी जा सकती हैं। परन्तु उन सभी कथाओं का वर्णन करके मैं इस लेख के आकार में वृद्धि नहीं करूँगा। इस छोटी-सी घटना से ही सभी लोग समझ सकेंगे कि आलमबाजार मठ में ऐसी निर्धनता के बीच भी हम लोग कैसे आनन्द का उपभोग किया करते थे। और भी एक बात कह दूँ, सुधीर (शुद्धानन्द) उन दिनों मठ में खूब आवागमन करता था। आत्मानन्द (शुकुल), खगेन (विमलानन्द), कानाई (बड़े) आदि भी उसी समय से मठ में आने लगे थे। रामकृष्णानन्द की इच्छा के अनुसार कानाई हर शनिवार को अपराह्न में ठाकुर-सेवा की कई चीजें लेकर मठ में आया करता था और रविवार के दिन संध्या के समय लौट जाता था।

रामकृष्णानन्द को दोनों पाँवों में एक तरह का चर्मरोग हो गया था। उन दिनों कानाई उनकी खूब सेवा किया करता था। जाड़ों में वह रोग बढ़ जाता था। खुजलाने पर उनके शरीर से मछली की त्वचा के समान पपड़ियाँ निकलती थीं। अनेकों प्रकार की औषधियों का उपयोग करने के बाद भी जब कोई लाभ नहीं हुआ, तब वर्धमान सासपुर की दवा के सेवन तथा मालिश से उन्हें थोड़ी राहत मिली थी। वराहनगर के योगेन चैटर्जी महाशय भी प्राय: ही मठ में आया करते थे। वे भी विभिन्न प्रकार से सबकी सेवा किया करते। उसी समय से हम लोगों का उनके साथ परिचय हुआ था। अन्त में, वे अपनी पत्नी के साथ काशीवासी हुए। काशीधाम में ही वे विधुर हो गये थे। उनका अपना कहने को कोई नहीं रह गया था। स्वामीजी के अमेरिका से लौटने के दो-तीन महीने पूर्व योगेन चैटर्जी महाशय काशी छोड़कर हमारे मठ में आ पहुँचे। स्वामीजी ने आलमबाजार मठ में आने के बाद कानाई तथा योगेन चैटर्जी को संन्यास दिया। कानाई का नाम हुआ निर्भयानन्द और चैटर्जी महाशय हुए नित्यानन्द।

अध्ययन और अध्यापन

स्वामी अभेदानन्द ऋषीकेश के मण्डलेश्वर स्वामी धनराज गिरि से 'शारीरक भाष्य' पढ़ आये थे। स्वामी शिवानन्द और मैं हर रोज अपराह्न में करीब दो घण्टे उनसे वेदान्त-भाष्य पढ़ा करते थे। उन दिनों प्राय: हर डाक से स्वामीजी के व्याख्यान पुस्तिकाओं के रूप में छपकर आया करते थे। हम लोग बड़े आग्रह के साथ उन्हें पढ़कर उन पर चर्चा करते। उसी समय स्वामीजी लन्दन आये और लन्दन से ही स्वामी सारदानन्द को बुला भेजा। हम लोगों ने स्वामी सारदानन्द को 'रेवा' नामक जहाज में बैठा दिया था। इसके कुछ दिनों बाद ही स्वामी अभेदानन्द को बुलावा आया। स्वामीजी ने उन्हें कलकत्ते से सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय भी साथ ले आने को लिखा था।

मैं पण्डित-प्रवर सत्यव्रत सामश्रमी के घर जाकर उनके द्वारा सम्पादित और एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित 'बिब्लियोथिका इण्डिका' नामक सम्पूर्ण वैदिक ग्रन्थावली खरीद लाया। इसके बाद हम लोग स्वामी अभेदानन्द को जहाज में बैठा आये। यात्रा के पूर्व जेटी में एक ग्रुपफोटो भी लिया गया था। अब भी कई लोगों के घर में उस फोटो की प्रति हो सकती है। **(क्रमश:)**

जयरामबाटी : बंगाल का एक मनोरम ग्राम

स्वामी चेतनानन्द

अनुवाद – लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया, भोपाल

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।।

चण्डी ११/५४-५५

– इस प्रकार जब-जब दानवों के प्रादुर्भाव से विघ्न उपस्थित होंगे, मैं तब-तब अवतीर्ण होकर शत्रुओं का विनाश करूँगी।

अवतार अथवा महापुरुष का जन्मस्थान एक शाश्वत तीर्थ स्थान बन जाता है। अयोध्या, मथुरा, बेतलहम, नवद्वीप, कामारपुकुर, जयरामबाटी क्रमशः श्रीराम, श्रीकृष्ण, ईसा, चैतन्य, श्रीरामकृष्ण और सारदा देवी के जन्म स्थान, सदैव के लिए विश्व मानचित्र में चिह्नित हो गए हैं। उन्नीसवीं शताब्दी तक, कामारपुकुर और जयरामबाटी, बंगाल के महत्त्वहीन और बाहरी संसार के लिये लगभग अज्ञात ग्राम थे। आज सम्पूर्ण विश्व से लोग श्रीरामकृष्ण और श्रीसारदादेवी के जन्मस्थान का भ्रमण कर रहे हैं।

जयरामबाटी एक शक्तिपीठ है, जहाँ आदिशक्ति देवी माँ ने मानवरूप धारण कर लीला किया। यह छोटा-सा गाँव, कोलकाता से ६४ मील उत्तर-पश्चिम, और कामारपुकुर से ४ मील उत्तर-पश्चिम में बंगाल में बाँकुरा जिले के दक्षिणपूर्वी भाग में स्थित है। उन्नीसवीं शताब्दी में पानी, बिजली और सफाई सुविधा के बिना, फूस की खप्परवाली मिट्टी की झोपड़ियों में वहाँ लगभग १०० परिवार निवास करते थे।

जयरामबाटी : एक स्वर्ग ग्राम

हरे-भरे पौधों और वृक्षों तथा प्रचुर फल एवं फूलों से लदे हुए एक गाँव की कल्पना कीजिए। जो चारों ओर विस्तृत चारागाह, सुन्दर तालों और पोखरों से घिरा है, कलकल ध्वनि करती हुई एक नदी पास से बहती है। गाँव की झोपड़ियों और मन्दिरों की कल्पना कीजिए, ऊपर नीला आकाश, नीचे हरे भरे धान के खेत, चारों ओर खिली हुई धूप, लाल-धूल से भरे रंग-बिरंगे मार्ग, चिड़ियों का चहचहाना, और हरे-भरे मैदान को शीतल करनेवाली शुद्ध और मंद वायु। वर्षा ऋतु के समय बादलों से भरे आकाश के नीचे किसान अपने बैलों से जुताई करते हैं। दूसरे समय जब उनकी गाएँ चरती रहती हैं, चरवाहे वटवृक्ष के नीचे बंशी बजाते हैं। बंगाल के गाँव की सन्ध्या की कल्पना कीजिए, महिलाएँ घर के आँगन की वेदी में, विश्व ब्रह्मांड के स्वामी की आरती करती हैं, और शंख फूँकती हैं, तेल के दीए की लौ जैसे दीवाल पर जगमगाती है, माताएँ और दादियाँ उनको घेरे हुए बच्चों को रामायण और महाभारत की कहानी सुनाती हैं। मन्दिरों के सन्ध्या-आरती की घंटियाँ और घंटों की आवाज पूरे गाँव में गूँजती है। इस प्रकार के दृश्य, कल्पना को भाव-विह्वल कर देते हैं, जो कम-से-कम अस्थाई तौर पर मानव मन को सांसारिक धरातल से ऊपर उठा देते हैं। लेकिन यह घटना काल्पनिक नहीं है। यह रमणीक ग्राम सारदादेवी के जन्मस्थान, १६२ वर्ष पूर्व का जयरामबाटी है।

सारदादेवी के समय जयरामबाटी उपजाऊ कृषि-भूमि से घिरा एक छोटा सा गाँव था। ग्रामवासी अन्य फसलों के साथ चावल, गेहूँ, मसूर, आलू, फलियाँ, मिर्च, गन्ना और कपास उत्पन्न करते थे। अधिकांश ग्रामवासी कृषि और मछली पकड़कर अपना जीवन-यापन करते थे। ब्राह्मणों का एक छोटा समूह आधिकारिक रूप से शिक्षा और पुरोहिती का कार्य करता था। सारदादेवी का जन्म, इनमें से एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

एक छोटी बच्ची की तरह सारदा, अपने छोटे गाँव तक ही सीमित नहीं थी। गाँव के उत्तर में घास के मैदान के साथ आमोदर नदी बहती है। सारदा इसे गंगा मानती थी और वर्षा ऋतु में जब उसमें पर्याप्त जल होता, तो

अपने भाइयों के साथ वहाँ स्नान करती थी। नदी के दक्षिणी तट पर एक श्मशान घाट है, और उत्तर में देशरा ग्राम स्थित है। जयरामबाटी के पूर्व में हल्दी ग्राम है, दक्षिण में जिबटा, दक्षिण-पश्चिम में मसीनापुर और पश्चिम में सीहर। जयरामबाटी से आधा मील दूर सीहर सारदादेवी की माता का जन्म स्थान है और श्रीरामकृष्ण के भतीजे हृदयराम मुखोपाध्याय (हृदय) का भी। सीहर के उत्तर में, सिरोमनीपुर, दरिद्रता से ग्रस्त, मुख्य रूप से मुसलमानों से बसा हुआ गाँव था। बाद के वर्षों में माँ सारदा मकान बनवाने के लिए सिरोमनीपुर के मजदूर काम पर रखती थीं। जयरामबाटी के उत्तर पश्चिम में चार मील दूरी पर कोआलपाड़ा आश्रम है, जहाँ सारदादेवी विष्णुपुर से अपने गाँव अठाइस मील बैलगाड़ी से यात्रा करते समय विश्राम करती थीं।

जब सारदादेवी छोटी थी, तब जयरामबाटी में बाजार नहीं था। यद्यपि ग्रामवासी कमोबेश आत्मनिर्भर थे, वे कभी-कभी नौ मील दूर एक छोटे कस्बे कोतालपुर में कपड़े, नमक, मसाले, मिट्टी तेल, माचिस, बर्तन और अन्य आवश्यक सामग्री खरीदने जाते थे। वे छह मील दूर स्थित, कामारपुकुर और कयापाट-बदनगंज के बाजार से मिठाई और किराना खरीदते थे। जयरामबाटी से एक मील के भीतर सीहर में एक किराना सामान की दुकान थी। जयरामबाटी में एक नाई का परिवार, एक लोहार परिवार, एक हलवाई का परिवार और कुछ अपनी गायों का दूध बेचने वालों का परिवार रहता था।

जयरामबाटी के दक्षिण में बनर्जी का छोटा ताल स्थित है। ग्रामवासी उसके जल का उपयोग नहाने, रसोई पकाने और पीने के लिए करते थे। गाँव के पश्चिम में अहेर ताल (अब 'माँ का ताल' कहते हैं) जिसका उपयोग गाँव के खेतों की सिंचाई के लिए किया जाता था। पुण्यपुकुर नामक एक छोटा पोखर गाँव के बीच में है। ग्रामवासी इसके जल का उपयोग कपड़े और बर्तन धोने के लिए करते थे। सारदा देवी का मकान पुण्यपुकुर के पश्चिम में है, और कालूपुकुर दूसरा छोटा पोखर उनके पैतृक मकान के बिल्कुल दक्षिण पश्चिम में है।

जयरामबाटी के लोग गरीब या मध्यवर्ग के थे और वे बड़े धार्मिक थे। धार्मिक उत्सव, धार्मिक नाटकों का प्रदर्शन, हिन्दू पौराणिक कथाओं का पाठ-कीर्तन और भक्तिपूर्ण बाऊल गायन, उन्हें दैनिक जीवन की नीरसता से मुक्ति प्रदान करते थे।

इस छोटे गाँव में चार मन्दिर हैं। गाँव की अधिष्ठात्री देवी, सिंहवाहिनी देवी हैं, देवी अपनी दो सखियाँ चंडी और महामाया के साथ विराजमान हैं। गाँव के दक्षिण पूर्व कोने में, देवी शीतला का अलग मन्दिर स्थित है, सारदा देवी का परिवार इस मन्दिर में पूजा करता था। शरद ऋतु में दुर्गा पूजा का आयोजन शीलता मन्दिर में होता था, जिसमें दूसरे गाँवों के बहुत लोग भाग लेते थे। पुण्यपुकुर के उत्तर पश्चिम में, फूस की दो झोपड़ियों का उपयोग मन्दिर के रूप में होता था, एक भगवान सुन्दरनारायण (सारदा देवी के पैतृक देवता) को समर्पित तथा दूसरा माँ काली को। जब माँ काली की पूजा बंद हो गई, इस झोपड़ी का उपयोग बाद में बच्चों के स्कूल के लिये होने लगा। गाँव के पश्चिम दिशा में मन्दिर है, जात्रा सिद्धि और बीरकांत धर्म-ठाकुर के लिये। जयरामबाटी के ग्रामवासी केवल अपने मन्दिरों में ही नहीं जाते थे। उदाहरण के लिये शिवरात्रि के समय सीहर के शान्तिनाथ शिव मन्दिर में चौबीस घंटे के कीर्तन में भाग लेने के लिये इकट्ठा होते थे।

कलकत्ता और जयरामबाटी के बीच यात्रा

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में कामारपुकुर-जयरामबाटी क्षेत्र से कलकत्ता जाना कठिन था। तीन से चार दिन की यात्रा होती थी। लोग प्राय: समूह में यात्रा करते थे, क्योंकि विस्तृत मैदान और सूने मार्ग प्राय: दस्युओं से आक्रांत रहते थे। जयरामबाटी से कलकत्ता के यात्रियों को चौसठ मील चलना पड़ता था और पाँच नदियाँ-आमोदर, द्वारकेश्वर, मुण्डेश्वरी, दामोदर और गंगा को पार करना पड़ता था। जो खर्च वहन कर सकते थे, पालकी से यात्रा करते थे या जयरामबाटी से लगभग चौतीस मील दूर बर्दवान से रेल पकड़ते थे। आजकल कलकत्ता से कामारपुकुर और जयरामबाटी मात्र तीन घंटे में कार द्वारा जाया जा सकता है। कामारपुकुर और जयरामबाटी के बीच की दूरी चार मील है। OOO

हमारी गौरवशाली समृद्ध ऋषि परम्परा

पं. गिरि मोहन गुरु, होशंगाबाद

भारतीय ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि संन्यासी, यति, ऋषि, ब्राह्मण, ये शब्द परस्पर सम्बन्धित तथा एक ही अर्थ के बोधक हैं। उद्‌भट विद्वान काका साहब कालेलकर द्वारा लिखित गीतारत्न के अनुसार सर्वप्रथम यति शब्द लें। वे लिखते हैं कि 'यति' शब्द की उद्‌भूति संस्कृति के 'यत्' धातु से है, जिसका अर्थ है – प्रयत्न करना, परिश्रम करना। जो परिश्रम करता है, वह यति है। 'यम' का अर्थ है (ऊपर से) रोकना, संयम करना। संयम करनेवालों को यति कहते हैं। गीता के ५वें अध्याय के २६ वें श्लोक में जो यति शब्द आया है, वहाँ यति का अर्थ संयमी संन्यासी और जिसने अपने मन, वाणी और अब इन्द्रियों को वश में रखा है। इसी कृति के ७८ पृष्ठ पर ऋषि के विषय में लिखा है कि जो जाता है, प्रगति करता है, ज्ञान को ढूँढता है और पाता है तथा अज्ञान और दोषों का नाश करता है अथवा आत्मदर्शन करता है, वह ऋषि है। गीता भाष्य में श्रीशंकराचार्य ने ऋषय: का अर्थ दिया है सम्यग् दर्शिन: संन्यासिन:। सब ऋषि संन्यासाश्रमी नहीं थे। बहुत से गृहस्थाश्रमी भी थे। इसी प्रकार पृष्ठ १७८ के अनुसार ऋषि ब्रह्मचारी भी थे और गृहस्थाश्रमी भी। वे पुरोहित का काम भी करते थे और राज्य भी चलाते थे।

ब्राह्मण शब्द के विषय में इसी ग्रन्थ के पृष्ठ २१८ पर विद्वान लेखक का मत है कि जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्राह्मण है। गीता में २-४६ में ब्राह्मण शब्द आया है। वहाँ भी श्रीशंकराचार्य ने उसका अर्थ संन्यासी किया है।

अब हम कुछ गिरि, पुरी नामधारी यतियों की चर्चा करें, जो आजकल गोस्वामी संज्ञा से अभिहित हैं। वैदिक वाङ्मय में यति एक यज्ञ विरोधी के रूप में भी देखने को मिलते हैं। इसलिए इन्द्र ने इन्हें वृकों के आगे कर दिया था। इनमें से प्रथुरश्मि, बृहतगिरि एवं रायोबाज ही अपने को बचा सके थे। बाद में कृपा कर इन्द्र ने प्रथुरश्मि को छात्रविद्या, बृहतगिरि को ब्रह्मविद्या और रायोबाज को वैश्यविद्या सिखाई। इस प्रसंग से भी गिरि, यतियों (गोस्वामियों) का ब्राह्मण होना सिद्ध होता है। वेदों के कक्षीवन, गोपवन, पर्वत, नारायण आदि अनेक ऋषि मन्त्रद्रष्टा थे। गोस्वामियों के पूर्वज ऋषियों की ओर ध्यान जाने पर अंगिरा, भृगु, मन्यु आदि ऋषि कुल हमारे पूर्वजों के अधिक निकट ठहरते हैं।

ऋषि अंगिरा के विषय में उल्लेख मिलता है कि ये ब्रह्मा के सिर से उत्पन्न हुए। सम्भवत: कुछ विद्वान अंगिरा के जन्म के विषय को ध्यान में रखकर ही गोस्वामियों को शिरोरन्ध्रा (सिर उत्पन्न) ब्राह्मण कहते हैं। ये अंगिरा ऋषि गृहस्थ होते हुए भी तपस्वी व योगी थे। दक्ष की पुत्री स्मृति से इनका विवाह हुआ था। गिरि और वन की अभेदता के लिये ब्रह्माण्ड पुराण की पुष्टि मिलती है, जिसके अनुसार अंगिरा च्यवन ऋषि के पुत्र थे। इनके सारस्वत एवं पिप्पलाद दो पुत्र थे। अंगिरस वंश को अथर्वन वंश भी कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण में च्यवन को भार्गव या आंगिरस दोनों कहा गया है। (वर्तमान गिरियों का गोत्र भृगुलातृष है, जो भृगु और अंगिराओं से अपना सम्बन्ध स्पष्ट करता है। अब मत्स्य पुराण उत्तरार्ध (कल्याण अंक पृष्ठ ५४० पर अंकित ऋषि जाति शीर्षक लेख) से ऋषियों के स्वयं जन्म लेने, तपस्या से ऋषि बनने तथा वंश परम्परा से भी ऋषि होने का उल्लेख है, यथा – ब्रह्मा के दस मानस पुत्र, जो स्वयं उत्पन्न हुए – भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, ऋतु, मनु, दक्ष, बशिष्ठ और पुलस्त्य।

तपोवल से ऋषि होनेवाले – शुक्राचार्य, बृहस्पति, कश्यप, च्यवन, उतथ्य, वामदेव, अगस्त्य, कौशिक, कर्वम, वाल्यखिल्य, विश्रवा आदि थे। ऋषियों द्वारा गर्भ से उत्पन्न ऋषि के सत्य के बल से ऋषि होनेवाले वत्सर, नन्नहू, भरद्वाज, दीर्घतमा, वृहदक्षा, शरद्वान, वाजिश्रवा, परासर, शृंगी, शंखपाद आदि थे। ○○○

प्रेरक लघुकथा

स्वेद-कण मुक्तामणि जानो

शरत चन्द्र पेंढारकर

एक बार विजयनगर में घोर अकाल पड़ा। सारे तालाब और खेत-खलिहान सूख गए। जीवनावश्यक चीजों का अभाव हो गया। लोगों का जीना दूभर हो गया। अनावृष्टि की विभीषिका की कल्पना से राजा, कृष्णदेव राय चिन्तित हो गए। उन्होंने मंत्रिमंडल की बैठक बुलाई। राज पुरोहित ने अलग-अलग स्थानों पर यज्ञ कराने और इसका दायित्व तेनालीराम पर सौंपने का सुझाव दिया। राजा को यह सुझाव पसंद आया और वे तेनालीराम की ओर देखने लगे। तेनालीराम ने कहा, ''महाराज, स्वेद-यज्ञ करने पर समस्या सुलझ सकती है।'' राजपुरोहित ने तुरन्त कहा, ''मैंने अब तक पुत्रकामेष्टि, राजसूय, वाजपेय आदि कई यज्ञ सुने, लेकिन 'स्वेद-यज्ञ' तो पहली बार सुन रहा हूँ।'' तेनाली राम ने उसे अनसुना करते हुए राजा से कहा, ''यज्ञ के लिए धन की जरूरत पड़ेगी।'' राजपुरोहित ने तेनालीराम की नीयत पर शंका व्यक्त करते हुए कहा, ''मुझे तेनाली राम के कथन में खोट नजर आती है। उसे दिये गये रुपये बरबाद हो जाएँगे।'' तेनाली राम ने कहा, 'आप मुझ पर भरोसा करें। राजकोष का सारा धन ब्याज सहित वापस लौटा दिया जाएगा।''

छः महीने बाद तेनालीराम ने कहा, ''महाराज, स्वेद यज्ञ का कल अंतिम दिन है। आप कल अवश्य पधारें।'' राजा ने कोषाधिकारी से जब पूछा कि उसने तेनाली राम को कितने रुपये दिये थे, तो उसने बताया, तेनाली राम ने अनाज की माँग की थी, जो राजकीय गोदामों से अनाज देकर पूरी की गई। दूसरे दिन तेनालीराम राजा और मंत्रियों को शहर से दूर कृष्णानदी के समीपस्थ गाँवों में ले गये। वहाँ खेतों में खड़ी फसल देख राजा चकित रह गया।'' उसने पूछा, 'क्या यह स्वेद-यज्ञ के कारण सम्भव हुआ है?'' ''हाँ महाराज'' तेनालीराम ने उत्तर दिया। मजदूरों और किसानों को अपनी योजना बताकर मैंने उनसे नालियाँ खुदवाईं। गोदामों से प्राप्त अनाज को खेतों में छिटवाकर नालियों से पानी पहुँचाने की व्यवस्था की, जिसका परिणाम आप देख रहे हैं। कोषाधिकारी से जो अनाज लिया गया था, उसे इस फसल में से वापस किया जाएगा।'' ''नहीं, नहीं, इसे वापस करने की जरुरत नहीं है।'' राजा ने कहा, ''यह किसानों के पसीना बहाने का फल है। उनसे अनाज वापस लेना उनके श्रम का अपमान होगा। अलग-अलग स्थानों पर ऐसे स्वेद-यज्ञ करने की आवश्कता है।''

श्रम ईश्वर प्रदत्त विभूति है। परिश्रम मनुष्य को उद्यमी और अध्यवसायी बनाता है। श्रम से झरने वाले स्वेद कणों का मूल्य श्रमिक ही जानता है। स्वेदकण उसके लिए मणिमुक्ताओं से भी कीमती होते हैं। ○○○

पुस्तक समीक्षा

भागवत का शाश्वत सन्देश

लेखक – डॉ. सुरेशचन्द्र शर्मा
मो. ९८९३३९४९४७

सम्पादक – ओमप्रकाश श्रीवास्तव, मो. ९४२५०४२६४३

प्रकाशक – सर्वत्र, द्वितीय तल, उषा प्रीत कॉम्प्लेक्स, २ मालवीय नगर, भोपाल – ४६२००३, मोबा.९४१४०५२८३१, पृष्ठ- ९५६, मूल्य – १७९९/-

अन्यदा तत्प्रकाशस्तु श्रीमद्‌भागवताद् भवेत्।
श्रीमद्‌भागवतं शास्त्रं यत्र भागवतैर्यदा।
कीर्त्यते श्रूयते चापि श्रीकृष्णस्तत्र निश्चितम्।।

श्रीकृष्ण तत्त्व के प्रकाशाकांक्षी को वह तत्त्व श्रीमद्‌भागवत से ही प्राप्त हो सकता है। भगवान के भक्त जहाँ, जब कभी भागवत का कीर्तन-श्रवण करते हैं, वहाँ उस समय भगवान श्रीकृष्ण साक्षात् विराजमान रहते हैं। लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की लीलाओं का श्रवण-मनन-निदिध्यासन करने से त्रिविध ताप-दग्ध चित्त में शीतलता, परम शान्ति और आत्यन्तिक मुक्ति मिलती है। उनकी महान लीला जिस ग्रन्थ में निबद्ध हुई, उस महाकाव्य का नाम 'श्रीमद्‌भागवत' है और प्रणेता हैं बादरायण व्यास जी। भागवत का सारतत्त्व क्या है, भागवत का सन्देश क्या है, उसे डॉ. सुरेशचन्द्र शर्मा जी ने बड़े सुन्दर ढंग से, आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपने सद्यः प्रकाशित ग्रन्थ 'भागवत का शाश्वत सन्देश' नामक ग्रन्थ में किया है।

यह ग्रन्थ कुल पाँच खण्डों में विभक्त है। पहले खण्ड में वर्तमान सन्दर्भ में भागवत की प्रासंगिकता, पौराणिक कहानियों का चरित्र पर प्रभाव, उनका दार्शनिक प्रभाव, भागवत कथा के वक्ता-श्रोता आदि १४ विषय, दूसरे खण्ड में प्रथम से द्वादश स्कन्ध तक के विविध प्रसंगों की चर्चा है। तीसरे खण्ड में स्कन्ध-सार और दृष्टान्त हैं। चौथे खण्ड में तत्त्वचिन्तनम् शीर्षक के अन्तर्गत कथासार, भोग जीवन से भाव जीवन की ओर, धर्मसंस्थापक श्रीकृष्ण, भागवत का तत्त्वज्ञान आदि ११८ विषयों का प्रतिपादन है। पाँचवें खण्ड में रसास्वादनम् मांगलिक भागवत प्रस्तुति, भगवान की महिमा और उनका रहस्य और ध्यान साधना आदि १८ शीर्षकों का विश्लेषण है। ग्रन्थ रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ के महाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी स्मरणानन्द महाराज की मंगलमयी आशीर्वाणी से सुशोभित है। ग्रन्थ की शुद्धता और स्पष्टता सम्पादक की तीक्ष्ण, कुशल लेखनी को दर्शाती है। ऐसे लोकहितकारी ग्रन्थ के प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं। ○○○
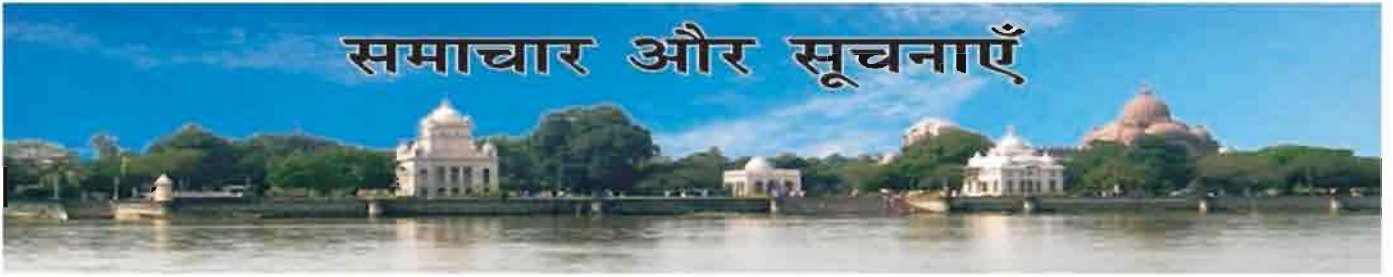
स्वामी विवेकानन्द जी की शिकागो व्याख्यान के १२५वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में **रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर** से प्रकाशित होनेवाली **'विवेक ज्योति'** मासिक पत्रिका के ***'शिकागो वक्तृता विशेषांक'*** का विमोचन छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री सम्माननीय
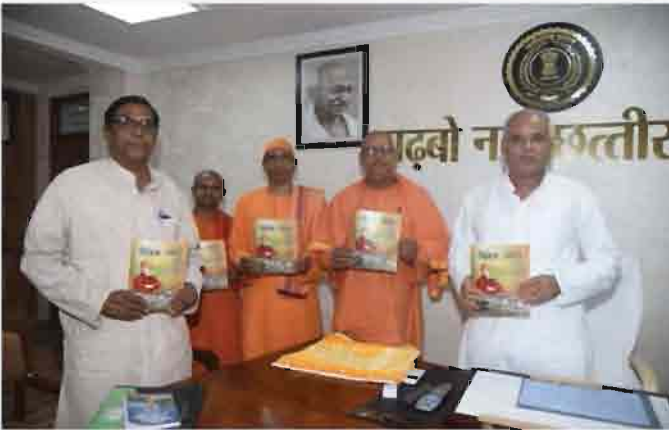
श्री भूपेश बघेल जी के करकमलों द्वारा दिनांक १३ अगस्त, २०१९ को सम्पन्न हुआ ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, सेलम, तमिलनाडु ने २ से ४ फरवरी, २०१९ तक आश्रम का शताब्दी समारोह मनाया, जिसका उद्‌घाटन सह-संघाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी ने किया। लगभग ९००० भक्त उपस्थित थे। इस अवसर पर एक रंगीन स्मारिका भी प्रकाशित की गई। सेलम आश्रम के १००वीं स्थापनोत्सव के अवसर पर निम्नांकित कार्यक्रमों का आयोजन किया गया –

१३ जून, २०१९ को मेडिकल छात्रों के लिए कान्फ्रेन्स किया, जिसमें ७ कॉलेजों के ५०० छात्र उपस्थित थे और २२ जून, २०१९ को सलेम नगरपालिका के सफाईकर्मियों के लिये विशेष कार्यक्रम किया, जिसमें १०० कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

१४ एवं १५ जून को सलेम केन्द्र ने दो विद्यालयों में जीवन हेतु प्रेरक व्याख्यान का आयोजन किया।

१७ जून पावन स्नान यात्रा दिवस पर **रामकृष्ण मिशन, नरोत्तम नगर** में सन्त-भोजनालय का उद्‌घाटन किया गया।

नेशनल एलिजिबिल्टी कम एन्ट्रेंस टेस्ट (NEET) २०१९ चिकित्सा एवं दन्त चिकित्सा में प्रवेश हेतु परीक्षा में **रामकृष्ण मिशन आश्रम, चण्डीगढ़** के छात्रावास के छात्रों ने राष्ट्रीय स्तर पर ३७वाँ स्थान प्राप्त किया एवं पंजाब राज्य में द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के आठ छात्रों ने NEET २०१९ में ९५ प्रतिशत अंक प्राप्त किए।

१० जून को **रामकृष्ण मिशन, शिलॉग** आश्रम ने 'आधुनिक उपकरणों की उपयोगिता एवं उनके दुष्परिणाम' विषय पर सेमिनार आयोजित किया, इसमें १२ विद्यालयों के ५५ शिक्षकों ने भाग लिया।

२१ जून को नार्थ २४ परगना के २ विद्यालयों में **रामकृष्ण मिशन आश्रम, टाकी** ने आदर्श शिक्षा कार्यक्रम का आयोजन किया, जिसमें ३२५ विद्यार्थियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण वेदान्त सेन्टर, लुसाका, जाम्बिया ने २१ जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर योग-शिविर का आयोजन किया, जिसमें १०० प्रतिभागी उपस्थित हुए।

लुसाका आश्रम में योग करते प्रतिभागी